

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182036

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No.. H 82 / B 57 J Accession No. G. H. 1445

Author भट्टनागर, उदयसिंह ।

Title जोगीरदार । [REDACTED] 1946

This book should be returned on or before the date
last marked below.

जागीरदार

जागीरदार

[त्याग, वलिदान, आघात और संघर्ष से पूर्ण मौलिक नाटक]

लेखक

उदयसिंह भटनागर

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग

बड़ौदा विश्वविद्यालय, बड़ौदा

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा, दिल्ली

प्रकाशक

गौरीशंकर शर्मा

भारती साहित्य मन्दिर

फव्वारा, दिल्ली-३

एस. चंद एण्ड कम्पनी

ग्रासफग्रली रोड, नई दिल्ली

फव्वारा, दिल्ली

माई हीरागेट, जालन्धर

लालबाग, लखनऊ

Checked 1965

मूल्य २॥)

Checked 1969

मुद्रक

श्यामकुमार गर्ग

हिन्दी प्रिन्टिंग प्रेस

बवीन्स रोड, दिल्ली-६

अपनी बात

समर की समाप्ति थी । साम्राज्यवादी श्रृंखला की कड़ियाँ एक-एक कर बिखर चुकी थी । उसको फिर से व्यवस्थित करने का प्रयत्न कर रहा था—उसका जर्जर फौलादी पंजा, अपनी काँपती हुई उँगलियों से ! पराधीनता के अन्तिम द्वार पर आ पहुँचे थे—आज़ादी के साहसी सैनिक, थके-से, माँदे-से, लड़खड़ाते हुए, और, ले रहे थे आज़ादी की प्रथम साँसें रुक-रुक कर एक-एक को गिन-गिनकर । उस एक-एक साँस ने सब में फिर से नवजीवन का संचार किया—पराधीनता के उस अन्तिम जर्जर द्वार को एक ही झटके से तोड़ देने के लिए ! इधर वह फौलादी पंजा बार-बार उन्हें भीतर धकेलने के लिए उठता, बैठता, वर्जिश करता, लड़खड़ाता रहा । हमारी विजय हुई, उसकी पराजय । आज़ादी मिली, उत्पीड़न, यातना, न्याय, वलिदान, आघात और संघर्ष के शव-शैल पर अरुण-रश्मि के समान मुस्कुराती हुई । साम्राज्यवाद सन्ध्या की पराजित हँसी हँसकर लौट गया ।

आज़ादी की नई समस्याएँ उत्पन्न हुईं । हमने भी उसमें अपनी योग्यता का परिचय दिया । यही कहानी है इस नाटक की, यही इतिहास है इस नाटक का । राजस्थान तो भारतीय इतिहास का निर्माता रहा है । नये इतिहास के निर्माण में उसका

यह योगदान कितना महत्वपूर्ण है । यह तो भावी पीढ़ी ही कह सकेगी, हम नहीं—उसी के लिए यह नाटक है । इसकी सफलता-असफलता, मेरी नहीं, पात्रों की होगी ।

उदयसिंह भटनागर

अध्यापक-कुटीर

म. स. विश्वविद्यालय, बड़ौदा

विजय-दशमी, रविवार,

१४ सितम्बर, १९५६

पात्र-परिचय

मानसिंह : एक जागीरदार

जैत : एक देहाती युवक

लक्ष्मीचन्द : एक पूँजीपति

निर्मला : लक्ष्मीचन्द की खरीदी हुई लड़की

पाठक : एक काँग्रेसी कार्यकर्ता

योगेश : सम्पादक

चम्पालाल : मानसिंह का गुप्तचर

संवाददाता, गंगा, रूपां, अन्य स्त्रियाँ, जागीरदार का कामदार तथा अन्य जागीरदार और जागीरदार के नौकर, मजदूर, कुबेरसिंह डाकू, शान्ता वेश्या, गाँव के अन्य लोग, मुखिया आदि ।

जागीरदार

पहला अंक

पहला दृश्य

[स्थान : गाँव के बाहर कुएँ का पनघट]

[कुएँ पर एक स्त्री पानी भर रही है। कुआँ अत्यन्त गहरा है, जिसमें दो वर्षों से वर्षा न होने के कारण पानी बहुत नीचे बैठ गया है। स्त्री अधेड़ है और अकाल के कारण थक गई है। वह धीरे-धीरे रस्सी को खींचती है। एक हाथ से रस्सी खींचती, कुछ रुकती और साँस लेती है, फिर खींचती और रुकती है, और फिर साँस लेती जाती है। इस प्रकार वह लम्बी रस्सी को खींचती रहती है। आस-पास के पेड़-पौधे सूखकर झंखाड़ हो गये हैं। दूर-दूर तक खेत सूखकर प्रचण्ड ग्रीष्मातप से उत्तप्त हो उठे हैं। कुएँ से कुछ दूर महादेव का एक मन्दिर है जिसमें आरती और प्रार्थना की ध्वनि सुनाई पड़ती है, समय प्रातःकाल का है, परन्तु ग्रीष्म की प्रचण्डता अभी से प्रभाव कर रही है। कुएँ के पास दो शव-कंकाल पड़े हैं। इधर-उधर मनुष्यों और जानवरों की हड्डियाँ और ख.पड़ियाँ बिखरी पड़ी हैं, जिन पर कौए और गीध बैठे हुए हैं। खेत बिल्कुल शमशान का दृश्य उपस्थित कर रहे हैं। जो स्त्री कुएँ पर पानी भर रही है उसके बाल रूखे, साड़ी काली और फटी हुई है। आँखें भयानक और डबडबाई हुई हैं। वह रुकती और साँस लेती

और कभी आस-पास पड़े हुए मुर्दों को घूरती, कभी आकाश में देखती और कभी मन्दिर से आती हुई ध्वनि को सुनती हुई फिर रस्सी खींचने लगती है ।

एक व्यक्ति आता है, भूखा और प्यासा । वह अर्ध-नग्न है, आकाश की ओर देखता और गहरी साँस लेता है, फिर भूमि की ओर देखकर गहरी साँस खींचता है । लड़खड़ाता हुआ सूखे पेड़-पौधों तथा भाड़ियों के पास जाता है और दीर्घ साँस द्वारा अपनी व्यथा प्रगट करता है । एक डाली तोड़कर उसकी छाल खाता है, पर उसको पूरी न खा सकने के कारण घृणा से उसको फेंककर लड़खड़ाता हुआ चला जाता है । पीछे दूर मन्दिर में प्रार्थना सुनाई देती रहती है और वह स्त्री कुँ से थोड़ा-थोड़ा पानी निकालकर अपना घड़ा भरती जा रही है । एक भूखी-प्यासी स्त्री का प्रवेश । काल के सभी चिन्ह इस स्त्री पर स्पष्ट रूप से लक्षित हो रहे हैं ।]

स्त्री : (कुँवाली स्त्री की ओर देखकर) पानी ! भूख... प्यास...रोटी (छटपटाती हुई पड़ जाती है । आधी उठती हुई हाथ के बल टिककर सूखी और विकट हँसी हँसती है) हहहहह...रो . टी...हहह...पा...नी...हहह...(हाथ के बल घसिटती हुई एक कंकाल के पास जाती है और हड्डियों को घूरती है) हहह... (इधर-उधर देखती है । कुँवाली स्त्री अपने कार्य में व्यस्त है, वह उधर देखकर भी उसके प्रति उदासीन-सी रहती है) हहहहह...पानी...हहहहह... (आगे हटकर एक हड्डी उठाती, उसे घूरती और फेंक देती

है । काँपते हाथों फिर दूसरी हड्डी उठाती है और उसे चाटने लगती है) हहहहह... (पीछे से एक भूखा मनुष्य आता है और उससे हड्डी छीनकर अट्टहास करता हुआ चाटने लगता है । कुएँवाली स्त्री थोड़े से पानी से भरे हुए डोल को निकालकर घड़े में पानी भरने लगती है । यह स्त्री उसे देखकर 'पानी' 'पानी' चिल्लाती हुई उस ओर भागती है । वह मनुष्य भी उस ओर दौड़ता है । तीनों छीना-भपटी करते हैं इससे डोल का तथा घड़े का गँदला पानी बिखर जाता है । अर्धेड स्त्री फिर घड़े को कुएँ में डाल देती है । इधर ये दोनों स्त्री-पुरुष नीचे बिखरे हुए पानी को चाटने का प्रयत्न करने लगते हैं और छीना-भपटी करते हुए आपस में भगड़ने लगते हैं । वह मनुष्य क्रोध में आकर उस स्त्री का गला दबा देता है, जिससे वह गिर पड़ती और छटपटाती हुई मर जाती है । मनुष्य अट्टहास करता हुआ चला जाता है, कुएँवाली स्त्री उसी प्रकार डोल को पानी में उतारती रहती है ।)

जैत : (प्रवेश करता है । उसके हाथ में एक लम्बी और उलभी हुई रस्सी है, जिसमें पानी से भरा हुआ एक लोटा लटका हुआ है । यह एक देहाती युवक है । व्यक्तित्व सुन्दर है, पर काल के चिह्न उसके शरीर में भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं) सब भाग गये ! आये थे गाँववालों की सेवा करने पर काल के आगे कोई टिक न सका ! तुम क्या जानो शहरवालो, भूख और प्यास से छटपटाते हुए

प्राणों की पीड़ा को ! (प्रार्थना की ध्वनि सुनकर) भगवान शंकर ! बन्द करो अपना यह ताण्डव ! हे इन्द्र ! क्या इस सूखे आकाश से तेरा अस्तित्व मिट गया ? (रुककर) कोई नहीं सुनता ! (एक पेड़ के पास जाकर) तुम भी सूख गये प्यारे कनेर ! तुम्हारी नसों में जीवन का गुलाबी रस नहीं ? जीवन का हरा-भरा वृक्ष सूखकर ठूँठ हो गया—निर्जीव और निष्प्राण ! (आगे बढ़कर हड्डियों और शवों की ओर देखकर) सूखे खेत में श्मशान लहरा रहा है ! (कुएँवाली स्त्री को देखकर) जल की आशा में डोल गहरा उतरता जा रहा है। पाताल तक उतर जाओ, पर पानी की एक बूँद न मिलेगी। (आगे बढ़कर एक हरे-भरे आक को देखकर) इस काल में भी तुम फूल रहे हो आक ? फूलो ! फूलो ! (पकड़कर तोड़ना चाहता है, पर रुक जाता है) नहीं ! सर्वनाश के बीच तुम्हारे जीवन की मुस्कान कितनी सुन्दर है ! (कुछ और आगे बढ़कर) यह घास ! (बैठकर उखाड़ लेता है और उसे घूरता हुआ) यह हरियाली कैसी ! मृत्यु के बीच में यह जीवन का उपहास ! सूखे आकाश में बादल का एक टुकड़ा भी दिखाई नहीं देता। (गहरी साँस लेकर भूख प्रदर्शित करने को पेट पर हाथ फेरता हुआ) इसे जीव ही तो खाते हैं, मनुष्य और जानवर में अन्तर ही क्या है ? घास को खाकर थोड़ा-सा पानी पी लेता है (कुएँवाली स्त्री का डोल पैदे में पहुँचता है जिसके

पहुँचने की ध्वनि होती है। स्त्री रस्सी को हिलाकर डोल भरने का प्रयत्न करती है और फिर उसे ऊपर खींचने में व्यस्त हो जाती है) अब तो भगवान ! पानी का पैदा आया, कुछ तो कृपा करो। (उठकर मृत स्त्री के पास जाकर घूरता हुआ) यह कौन ? गंगा, हा ! तेरे जीवन-प्रवाह को किसने रोक दिया ? किसने रोका ? बहो गंगे ! तुम फिर बहो ! इस सूखे काल में फिर से जीवन का संचार करो तो, अपने इस कनेर को फिर से हरा-भरा कर दो ! उठो, अपने हाथों से इसे रस-दान दो ! (सिर को गोद में लेकर पानी की दो बूँदें होठों पर डालता है, सिर हिलाता हुआ) उठो गंगे ! सावन के मेघ गरजते हुए आ रहे हैं। इस कनेर का अपने हाथों से सिंचन करो। (भरे हुए गले से) नहीं उठोगी ? (गद्गद् होकर) अच्छा ! सोओ ! सोओ ! चिर-निद्रा में सो रहो ! (सिर नीचे रखकर उसकी ओर देखता हुआ उठने लगता है) पर यह क्या ? किस भूखे भेड़िये ने तुम्हारे गले को दबाया है ? (भयंकर मुद्रा बनाता हुआ) नाश ! अंधकार ! जीवन के चारों ओर छा जाओ ! (उसे छोड़कर उठता हुआ) सदा के लिए (हृदय को संभालकर खड़ा होता हुआ कनेर के पास आ जाता है और उसे उखाड़कर फेंकता हुआ) नाश ! (आगे बढ़ता है) सर्वनाश ! अन्धकार ! आंधी ! तूफान ! (निर्मला भय से चीखती हुई आती है और उसके पीछे वही भूखा व्यक्ति उसकी गर्दन की

और अपने नाखूनी पंजे बढ़ाता हुआ चला आता है ।
 जैत उन्हें रोककर) तुम (निर्मला को) अन्धकार !
 तुम (व्यक्ति को) नाश ! (निर्मला चिल्लाती रहती है
 और व्यक्ति उसकी ओर झपटता हुआ चला आता है ।
 जैत उसको रोकता है) यह क्या कर रहे हो ? मनुष्य
 होकर स्त्री पर भूखे भेड़िये जैसे क्यों झपट रहे हो ?

व्यक्ति : पानी ! खून ! हहहहह... ।

निर्मला : (भयभीत होकर चिल्लाती है) पापा ! पापा !
 पा... (मूर्छित होकर गिर पड़ती है । जैत उसको
 सँभालता है और उस व्यक्ति को धकेल देता है । वह
 'हहहहह...' करता हुआ चला जाता है । जैत नीचे बैठकर
 निर्मला पर पानी के छींटे देता है और कुछ पानी उसके
 मुँह में भी डालता है । निर्मला मूर्छा खुलने पर फिर
 चीख मारती है—'पापा ।' और फिर मूर्छित हो जाती
 है ! जैत मुँह में पानी डालता है । मानसिंह, सेठ
 लखमीचन्द और उसके नौकर आते हैं ।)

मानसिंह : यहीं कहीं सुनाई दी थी उसकी चीख । (जैत की
 ओर देखकर नौकरों से) क्या देखते हो, पकड़ लो
 इसको ! (नौकर लाठियाँ लेकर जैत को घेर लेते हैं
 और उसको बन्दी बना लेते हैं ।)

लखमीचन्द : मेरी बेटी निर्मला ! (दौड़कर उसको उठाता है,
 जैत भी खड़ा हो जाता है ।)

निर्मला : (चेतना प्राप्त करती हुई) इसे छोड़ दो ! इसने मेरे
 प्राण...

मानसिंह : छोड़ दो इसे ! (नौकर जैत को मुक्त करते हैं ।)

निर्मला : पापा, तुम आ गये ! (जैत की ओर देखकर) वह राक्षस मेरी ओर झपटा । (अट्टहास करते हुए चीखती है और हाथों से मुँह ढँक लेती है ।)

मानसिंह : (पिस्तौल निकालकर) राक्षस, खून पीना चाहता था । ठहर, अभी तुझे खून पिलाता हूँ (वही पूर्ववाला व्यक्ति 'हहहहह...खून...हहहहह' कहता हुआ जैत के सामने आ जाता है । इसी के साथ मानसिंह के पिस्तौल की धाँय होती है । निर्मला 'राक्षस' कहकर चिल्लाती है । वह व्यक्ति मरकर गिर पड़ता है । पिस्तौल की 'धाँय' सुनकर गाँव के कुछ लोग लाठियाँ लेकर आते हैं ।) खून के प्यासे !

जैत : खून ! खून की प्यास गाँववालों को नहीं शहरवालों को होती है ।

मानसिंह : क्या कहा ? मेरे राज्य में मनुष्य का खून पीनेवाला तुम जैसा राक्षस जीवित नहीं रह सकता । मनुष्य की तरह जीना सीखो, (चुपके से पिस्तौल छिपाता हुआ) नहीं तो मर जाओगे...

एक व्यक्ति : किसने किया यह खून ? उसके हम प्राण ले लेंगे ।

मानसिंह : यही तो मैं भी कहता हूँ, मैं इस गाँव को अब गाँव नहीं रखना चाहता, मैं यहाँ शहर बसाना चाहता हूँ । मैं तुम जंगली और असभ्यों को शहरी और सभ्य बनाना चाहता हूँ ।

जैत : क्या करेंगे राजा साहब यहाँ शहर बसाकरें ? शहर का

शिष्टाचार हम गाँव वालों को क्यों देते हैं ?

मानसिंह : चुप ! मक्कार ! राक्षस ! एक भूखे मनुष्य को मार कर उसके मांस से अपना पेट भरना चाहता है । उसके खून से अपनी प्यास बुझाना चाहता है ! (पिस्तौल दिखाता हुआ) मैं तुझे अपनी गोली का शिकार बनाना चाहता हूँ ।

जैत : क्यों नहीं, शहरवालों की गोलियाँ जंगल के जानवरों पर ही तो चलती हैं । अकाल से वे जानवर सब मर गये तो क्या हम तो अभी जीवित हैं ।

मानसिंह : मक्कार ! ठहर ! (पिस्तौल उठाता है) निर्मला सामने आ जाती है और चिल्लाती है । (मानसिंह पिस्तौल हटा लेता है)

दूसरा व्यक्ति : जैत ! हत्यारा ! (सब एक दूसरे को आश्चर्य से देखते और कुछ कानाफूसी करते हैं)

तीसरा व्यक्ति : जैत, अब तक तो तू बड़ी समझदारी की बातें करता था, पर आज तो तूने राक्षस से बढ़कर काम किया है ।

जैत : जैत की अक्ल में पत्थर तो नहीं पड़े हैं, अकाल से उसकी बुद्धि भ्रष्ट तो नहीं हुई है, दादा !

दूसरा व्यक्ति : तो फिर यह हत्या क्यों की ?

जैत : जैत के पास पिस्तौल है न, उसी से यह (मृतक के घाव पर संकेत करता हुआ) गोली लगी है । (सब लोग मानसिंह की ओर क्रुद्ध होकर देखने लगते हैं) हत्यारा (मानसिंह की ओर संकेत कर) सामने खड़ा...

मानसिंह : चुप हत्यारे ! अब मुँह खोला तो (पिस्तौल दिखाकर)
तेरा सिर उड़ा दूँगा । (सब लाठियाँ लेकर मानसिंह
की ओर दौड़ते हैं और उसको घेर लेते हैं) खबर-
दार ! यदि जीना चाहते हो, तो मेरे सामने से हट जाओ !
(पिस्तौल दिखाता हुआ चारों ओर घूम जाता है । सब
दूर-दूर हट जाते हैं पर उसको घेरे रहते हैं ।)

जैत : जागीरदार और अकाल के आगे जीवन का कोई मूल्य
नहीं है ।

एक व्यक्ति : तो मरो और मारो । (सब लाठियाँ लेकर आगे
बढ़ते ही हैं कि पाठक 'ठहरो' चिल्लाता हुआ आता है)

पाठक : यह क्या हो रहा है, राजा साहब ?

मानसिंह : यज्ञ हो रहा है और उसकी पूर्णाहुति के लिए आपकी
आवश्यकता है । तैयार हो जाइये ।

पाठक : सो तो तैयार हूँ ही, पर गरीब किसानों को गोली का
शिकार क्यों बनाया जा रहा है ? ये तो बेचारे पहले
ही अकाल से मरे जा रहे हैं । क्या इनकी जमीनें छीन
कर होनेवाले मिल की नींव में इन्हीं के रक्त की
सिंचाई हो रही है ?

लखमीचन्द : नहीं, नहीं, मैं तो यहाँ पातालतोड़ कुआँ खुदवाना
चाहता हूँ, जिससे गरीब किसान इस प्रकार अकाल के
शिकार न बनें ।

पाठक : यह तो आपकी दानवीरता का लक्षण है, पर उसके
पहले यह रक्त का कुआँ क्यों खोदा जा रहा है ?

जैत : (बैठे ही बैठे) पानी तो पाताल में भी न मिलेगा, फिर

किसानों के खून से ही मिल की नींव क्यों न भरी जाय ?

मानसिंह : फिर मुँह खोला !

लखमीचन्द : राजा साहब, इस उजड़ को क्षमा कीजिये ।
(सब से) देखो भाई ! मैं तो अहिंसा का पुजारी हूँ, कई वर्षों से खदर पहनता हूँ, अहिंसा की बात करो, तो मैं कुछ कह सकता हूँ ।

कुछ लोग : हाँ, हाँ, ठीक है ।

अन्य लोग : हाँ, हाँ, सुना तो सही ! हाँ साब, कहो ।

लखमीचन्द : मैं यहाँ नल लगवा दूँगा और तुम्हारे बच्चों के लिए एक पाठशाला भी खुलवा दूँगा । मैं यह सब कार्य पाठक जी पर छोड़ देता हूँ । रचनात्मक कार्य से ही हमें स्वराज्य मिलेगा । इस कार्य के लिए मैं पाठक जी को दो हजार की थैली भेंट कर रहा हूँ । उसे ये जैसे चाहें वैसे खर्च करें ।

सब : हमारी जमीनों का क्या होगा ?

लखमीचन्द : फिर जमीनों की क्या चिंता ? मिल में काम करने से बहुत सा पैसा मिलेगा, धूप में तपने की मेहनत कम हो जायेगी, यहाँ का बना हुआ माल बाहर जायगा, बाहर से रेलों द्वारा धन-धान्य की वर्षा हो जायगी, पातालतोड़ कुएँ पानी की नदियाँ बहा देंगे, फिर यह काल का भूत आपोआप भाग जायगा । न कोई भूखा, न कोई प्यासा, और न किसी को लगान ही देना पड़ेगा । इससे अच्छा और क्या स्वराज्य होगा ?

मानसिंह : सेठ, बन्द करो यह बातचीत ! मेरा लगान कौन बन्द कर सकता है, चलो मेरे साथ जल्दी, यहाँ से... (मानसिंह, लखमीचन्द और निर्मला का उनके नौकरों के साथ सवेग प्रस्थान)

पाठक : देखा भाइयो ! आपकी कठिनाइयों का कितना जल्दी फल निकल आया । अच्छा हुआ यह तो मैं आ गया, नहीं तो राजा साहब तो सबको खून की होली खिला रहे थे । अपने चरित्र को मेरे समान महान् बनाओगे तभी इन दुराचारों पर आप विजय पा सकोगे । रचनात्मक कार्य में लग जाओ, जिससे स्वराज्य प्राप्त हो । मैं कहता हूँ, अब वह दिन दूर नहीं है जब हमारा पंचायती राज स्थापित होगा और इन जागीरदारों के पंजों से हमारे किसान भाई मुक्त होंगे ।

जैत : जागीरदार के चंगुल से छूटो और सेठ के चंगुल में फँसो ।

पाठक : तुम अभी उजड़ हो, तुम में व्यवहार-कुशलता की कमी है, इसी कारण यह खून हुआ है ।

जैत : (आकाश में एक श्याम मेघ देखकर) अहा मेघ ! (प्रसन्न होता हुआ) हा, हा... मेघ ! वह आकाश में काला मेघ (सब देखने लगते हैं) पानी से भरा मेघ ! करसों का प्यारा मेघ ! जीवों का प्राण मेघ, उठ रहा है ! (सब देखकर प्रसन्न हो जाते हैं) कुँएँ वाली स्त्री भी अपना डोल वहीं छोड़कर सब में आ मिलती है । सब प्रसन्न होकर नाचते-गाते हैं ।)

दूसरा दृश्य

[सामान्य ग्राम्य मार्ग । जैत और पाठक बातें करते आ रहे हैं ।]

जैत : पर यह आप कैसे कहते हैं कि मिल लगने से स्वराज्य मिल जायगा, और हमारे कष्ट दूर हो जायेंगे ?

पाठक : देखो जैत, थोड़ा सोचो और समझो । तुम्हारे गाँव में जब मिल लग जायगा तो बहुत से बेकारों को रोज-गार मिल जायगा, घर-घर में पानी के नल लग जायेंगे, पाठशाला खुल जायगी, अस्पताल खुलेगा, खाने-पीने की चीजें अपने आप बाहर से चली आयेंगी, गाँव की उन्नति होगी, शिक्षा का प्रचार होगा तो अपने आप स्वराज्य का अनुभव होने लगेगा ।

जैत : पर जब खाने के लिए दूसरों पर निर्भर रहेंगे तो हमें आजादी कहाँ रहेगी ?

पाठक : (चिढ़कर) तुम तो बेकार की बहस में पड़े हो ! गँवार को समझाना सीधा है पर तुम्हें समझाना कठिन है । शहर की हवा लग गई है और ऊपर से जवानी का जोश...

जैत : शहर की हवा लगी हो, चाहे न लगी हो, पर मैं वहाँ मिल तो न लगने दूँगा, चाहे मुझे अपना बलिदान ही...

पाठक : देखो, बेकार की हठ न पकड़ना, नहीं तो बना-बनाया काम बिगड़ जायगा । जवानी के जोश में कुछ न कर डालना । ऐसे समय में बड़े-बूढ़ों की बात मान

लेनी चाहिए, बलवानों को अहिंसा से ही जीता जा सकता है ।

जैत : मैं उन बलवानों को अहिंसा से ही जीतूँगा, पर वहाँ मिल तो न खोलने दूँगा । (दो सिपाही आते हैं ।)

पहला सि० : यही है वह हत्यारा !

दूसरा सि० : अब भी मिल न खोलने देने की ऐंठ बता रहा है बिचारा !

जैत : ऐंठ तो पुलिस का जन्मजात संस्कार है । अकाल के भुख-मरे की ऐंठ से शहरवाले क्यों बल खाते हैं ?

पहला सि० : पकड़ लो इस हत्यारे को !

जैत : मैं हत्यारा हूँ ? हत्यारा तो है वह तुम्हारा मालिक, जो अभी भूखों के रक्त से होली खेल गया है ।

दूसरा सि० : चुप रह मक्कार !

जैत : जो आपकी आज्ञा ! (चुपचाप खड़ा रहता है)

पहला सि० : बड़ा ढीठ है । ले चलो इसे पकड़कर ! (दोनों पकड़ने लगते हैं ।)

जैत : आप इतना कष्ट क्यों करते हैं, मैं तो स्वयं आपके साथ चलने को तैयार हूँ ।

पहला सि० : (लाठी से धकेलकर) बड़ी दया आ रही है (लाठी मारकर) बेचारे को । चल...

दूसरा सि० : बड़ा दयालू है बेचारा ! (लाठियों की वर्षा करता हुआ)

जैत : बड़ा कष्ट हो रहा है आपको, पर यह आवश्यक है,

खून की नदियों के पूर्व लाठियों की वर्षा होना आवश्यक है ।

दोनों सि० : तो और ले, ले, ले, ले ! (जोर-जोर में लाठियों की वर्षा करते हैं । आँखें बन्द कर जैत कुछ देर तो सहता रहता है, फिर मूर्छित होकर गिर पड़ता है । दोनों सिपाही रुक जाते हैं ।)

पाठक : हो गया आपका बल समाप्त ? अभी तो आप में कुछ और शेष होगा ।

पहला सि० : हाँ है, और वह तुझ पर आजमाना चाहता हूँ ।

पाठक : आप अपनी इच्छा पूरी कर सकते हैं ।

दूसरा सि० : (जोर से धक्का देता है, जिससे पाठक गिर जाता है) क्यों, बिना मौत मरने का इरादा है ? तो ले तेरा सिर ही नाप लेता हूँ । (एक लाठी जमाता हुआ उसका हाथ पकड़कर घसीट ले जाता है ।)

तीसरा दृश्य

[मार्ग में एक ओर से सम्पादक और दूसरी ओर से संवाददाता आता है । संवाददाता एक १५ वर्ष का युवक है । दोनों खद्दरधारी हैं ।]

संवाददाता : नमस्कार ! (एक पत्र देता है)

सम्पादक : नमस्कार ! क्या संवाद है ? (पत्र खोलकर पढ़ता है और फिर संवाददाता की ओर देखता है)

संवाददाता : कुछ हाथ-खर्च मिल जाय, घर में खाने को कुछ नहीं है ।

संवाददाता : इस सड़ियल संवाद पर कुछ मिलने की आशा रखते हो ? अभी छः महीने तक निःशुल्क काम करना सीखो । 'जनता' का प्रचार करो, उसके पश्चात् मैं तुम्हारा उचित पारिश्रमिक बाँधने की सोचूँगा । (चम्पालाल गुप्तचर पीछे से आकर वृक्ष की आड़ में छिप जाता है और सुनने लगता है । उसको देखकर भी जैसे देखा ही न हो) कैसे गलत ढंग से संवाद लिखा है । इसी को फिर से लिखो । मैं लिखाता हूँ ।

संवाददाता : (कागज-पेंसिल लेकर तथा कागज के नीचे अपनी टोपी रखकर लिखने लगता है । गुप्तचर भी आड़ में खड़ा रहकर लिखने लगता है) हाँ, बोलिए ।

सम्पादक : (धूमता हुआ और सोचता हुआ) गुमानपुरा गाँव में अकाल का नग्न नृत्य !

संवाददाता : (लिखता हुआ) हाँ ।

सम्पादक : इसे काट दो...नहीं रहने दो ।

संवाददाता : इसे...काट...दो...नहीं...रहने दो । हाँ...

सम्पादक : तुम मूर्ख हो ! (उससे कागज छीनकर उसकी गोली बनाकर गुप्तचर की ओर फेंक देता है । गुप्तचर उसे उठाकर जेब में रख लेता है ।)

संवाददाता : आप बड़े हैं, क्षमा कीजिये !

सम्पादक : संवाद लिखना सरल नहीं है, दिमाग की चर्बी पिघलकर आँखों में उतर आती है । जाओ, यहाँ से ! (संवाददाता जाने लगता है) अच्छा ठहरो, यहाँ आओ । (आता है) दूसरा कागज लो और फिर लिखो ।

संवाददाता : (जेब टटोलता हुआ) कागज तो अब नहीं है ।

आप ही दे दीजिये, थोड़ा सा ।

सम्पादक : कागज भी मैं दूँ ? कागज मैं दूँ, पेंसिल मैं दूँ, संवाद मैं लिखाऊँ और ऊपर से संवाद का पारिश्रमिक भी मैं दूँ ! (ठंडी साँस लेता हुआ) ओह ! सम्पादक का जीवन भी कितना कठिन है !

संवाददाता : एक पूरी तपस्या है, यह तो देश-सेवा है, श्रीमान्जी !

सम्पादक : देश-सेवा है इसीलिए तो करते हैं । नहीं तो, पागल कुत्ते ने काटा है, जो इतनी कठिनाइयाँ मोल लें, बीबी-बच्चों को भूखों मारें और सरकार की जेल में सड़ा करें। सन् बयालीस में आठवीं बार जेल गया हूँ । और फिर जागीरदारों की जेलों में तो नरकदेव भी तड़फ उठते हैं ।

संवाददाता : अपने त्याग और तपस्या से ही तो आपने यह ख्याति प्राप्त की है ।

सम्पादक : नहीं, नहीं, मैं इस योग्य कहाँ ?

संवाददाता : मैं ठीक कहता हूँ, यदि मैं होता, आपके स्थान पर, तो मरकर ही जेल से मुक्त होता । (गुप्तचर उसको घूरता हुआ मूँछों पर ताव देता है ।)

सम्पादक : खैर, जाने भी दो । (कागज देता हुआ) अब लिखो ।

संवाददाता : अरे हाँ, हाँ, लाइये । (कागज लेकर लिखने लगता है)

सम्पादक : लिखो, गुमानपुरा गाँव में अकाल का भीषण,

कर, तांडव प्रतुप्त, नग्न-नृत्य !

संवाददाता : (लिखता हुआ) हाँ, ...नग्न नृत्य ।

सम्पादक : मनुष्य, मनुष्य का मुर्दा मांस खाकर भी जीवित नहीं रहता ।

संवाददाता : हाँ, जीवित नहीं रहता ।

सम्पादक : लाखों मर गये, हजारों मर रहे हैं, सैकड़ों मरने वाले हैं, पशु-पक्षी तो कोई बचा ही नहीं ।

संवाददाता : हाँ, बचा ही नहीं ।

सम्पादक : (सोचता हुआ) जागीरदार (सिर खुजलाता हुआ) अपनी हवेली में बैठा गरीबों के रक्त की मदिरा पीकर (सोचता हुआ) रक्त की मदिरा ...रक्त की इ... मदिरा आ...पी क अ ...र...

संवाददाता : रक्त की मदिरा पीकर...रक्त की मदिरा...रक्त की इ...मदिरा आ...पीक...अ...र...हाँ...

सम्पादक : हाँ, तो रक्त की मदिरा पीकर अपनी सहेलियों के साथ विलास की गहरी नींद में सो रहा है ।

संवाददाता : हाँ, सो रहा है । अरे, एक बात तो भूल ही गये ! आज उसके यहाँ नाच-गान हो रहा है, यह तो मैंने उस संवाद में लिखा ही नहीं ।

सम्पादक : इसीलिये तो मैंने यह लिखवाया है ।

संवाददाता : आपकी सूझ बड़ी गहरी है, आखिर अनुभव भी तो कुछ चीज है ।

सम्पादक : अच्छा तो आगे लिखो ।

संवाददाता : हाँ, बोलिये । (लिखता है)

सम्पादक : जागीरदार और पूँजीपति द्वारा गाँव को उजाड़ देने का षड्यंत्र सफल न हो सका। एक पूँजीपति लखमीचंद वहाँ के जागीरदार के साभे में एक मिल खोलना चाहते थे। इसके विरोधस्वरूप वहाँ के लोगों ने सत्याग्रह किया, तो जागीरदार ने उन लोगों के रक्त से होली खेली। इसमें ४० व्यक्ति घायल हुए और १० मारे गये, मरने वालों में स्त्रियों की संख्या अधिक थी।

संवाददाता : ऐसा तो नहीं था।

सम्पादक : ऐसा ही था।

संवाददाता : क्या आपने देखा था ?

सम्पादक : नहीं। क्या तुमने देखा था ?

संवाददाता : मैंने तो नहीं देखा। मैंने जैसा सुना वैसा लिख लाया। वह तो बात ही दूसरी थी और उसमें एक ही व्यक्ति मरा था।

सम्पादक : अरे राजवाले दस मरते हैं तो एक बताते हैं और सम्पादक एक मरता है तो दस बताते हैं !

संवाददाता : ना बाबा, ना, राजवाले चाहे सौ मरें पर सम्पादक एक भी न मरे।

सम्पादक : तुम भी रहे मूर्ख के मूर्ख !

संवाददाता : आप बड़े हैं, क्षमा कीजिये !

सम्पादक : (क्रुद्ध होकर) अच्छा, आगे लिखो !

संवाददाता : (लिखता है) हाँ, बोलिये।

सम्पादक : वहाँ के कई लोगों को बन्दी बना लिया गया है। उनके प्रसिद्ध लोक-नेता श्री पाठक को भी बन्दी बनाया

जा रहा है ।

संवाददाता : यह कैसे जान लिया आपने ? यह तो मैं कहना ही चाहता था कि पाठक और जैत को भी अभी-अभी पुलिस घसीटे ले जा रही थी ।

सम्पादक : कोई ऐसे-वैसे सम्पादक थोड़े हैं । आगे की भी तो सोचनी पड़ती है । (सोचता हुआ) अच्छा, इस बन्दी वाले वाक्य को काट दो और उसके स्थान पर इस प्रकार लिख दो...

संवाददाता : (काटकर) हाँ ।

सम्पादक : वहाँ के एक परम उत्साही युवक जैत को लाठियों से पुलिस ने इतना पीटा कि वह बेहोश हो गया ।

संवाददाता : (लिखता हुआ) हाँ, हाँ पीटा तो गया था और जैत मूर्छित भी हो गया था, पर आपने यह सब कैसे जाना ?

सम्पादक : यह सब तुम्हें बता दूँ ?

संवाददाता : हाँ, आगे लिखवाइये ।

सम्पादक : शान्त जनता खड़ी देखती रही । भरे बाजार में मूर्छित व्यक्तियों को घसीटकर ले जाया गया । उनके घावों से खून की नदियाँ बह चलीं ।

संवाददाता : नदियाँ बह चलीं, हाँ ।

सम्पादक : और वहाँ के सम्पादक और संवाददाताओं के पीछे गुप्तचर लग रहे हैं । (गुप्तचर की ओर देखता है । गुप्तचर चौंक जाता है) लिख लिया ?

संवाददाता : हाँ, लिख लिया ।

सम्पादक : अच्छा, तो करो अपने हस्ताक्षर ।

संवाददाता : हैं, हस्ताक्षर !

सम्पादक : हाँ, हाँ, कर दो । डरने की कोई बात नहीं है ।

संवाददाता : डर लगता है, श्रीमान जी ! अभी मैं अपना नाम नहीं देना चाहता हूँ ।

सम्पादक : कोई गुप्त नाम रख लो ।

संवाददाता : क्या रखूँ ?

सम्पादक : यह भी मैं बताऊँ ? अच्छा लिखो चम्पालाल ।
(गुप्तचर चौकता है)

संवाददाता : (लिखकर) चम्पा...लाल । लीजिये ।

सम्पादक : लाओ । (लेकर) अच्छा नमस्ते । (सम्पादक एक ओर जाता है और संवाददाता उस ओर जाता है जिस ओर गुप्तचर खड़ा है)

संवाददाता : नमस्ते । चलो, बला टली ।

चम्पालाल : (मुँछों पर ताव देता हुआ सामने आता है) एक बला टली तो दूसरी तो सामने है ।

संवाददाता : (डरता हुआ) हैं हैं हैं हैं हैं...आप...आप श्रीमान जी !

चम्पालाल : (उसी प्रकार) हैं हैं हैं हैं हैं...आप...श्रीमान जी !
(एँठकर) यमराज के चाचा चम्पालाल जी गुप्तचर हैं ।

संवाददाता : तो मेरा...मेरा...मेरा तो कोई अपराध नहीं ।
अच्छा तो नमस्ते । अभी आवश्यक कार्य है, फिर मिलूँगा
(शीघ्रता से जाने लगता है) ।

चम्पालाल : अब आवश्यक कार्य के बच्चे ! चल इधर । अब

तो तुझे जागीर की जेल में सड़ना पड़ेगा, तब दिमाग की चर्बी उतरकर आँखों में आयगी । (गर्दन पकड़कर धकेलता है)

संवाददाता : अरे मुझे छोड़ दो ! मेरे बीबी-बच्चे मर जायँगे !

चम्पालाल : मर जायँगे तो मर जाने दे यह तो देश-सेवा है ।
(ले जाता है)

चौथा दृश्य

[जागीरदार का बगीचा । कुछ कुर्सियाँ लग रही हैं । मदिरा का दौर चल रहा है । एक नर्तकी नाचती-गाती और मदिरापिलाती जा रही है]

मानसिंह : (नशे में) दारू की मिल खुलवा दूँगा तेरे नाम से !
(मद्यपी की सी चेष्टा करता हुआ) और...उससे कह दूँगा, नहीं चाहिये तेरा रुपिया...मुझे तो दारू चाहिये । देगा वो दारू (खाँसता है) एक पातालतोड़ कुआँ खुदवा दूँगा...दारू का । (नर्तकी नाचती और मदिरा पिलाती है) और...उस कुएँ में हम-तुम दोनों गोते लगाएँगे, चलोगी...तुम... ? बोलो । नहीं बोलतीं... एक नाच और प्यारी...बस एक नाच और...(नर्तकी नाचती है) । बस, बस ! गिर जाओगी प्यारी । अब मत नाचो । अब बोलो आओगी । नहीं आओगी...तो... जाओ...कोई है ? (एक नौकर आता है) खजाने से इसे पच्चीस रुपिया दे दो । (नर्तकी और नौकर नम-

स्कार करके चले जाते हैं) जाओ...मैं अकेला ही...
दारू के कुएँ में गोते लगाऊँगा। वाह रे ! मिल-
मालिक...आया है मेरा लगान बन्द करने (पिस्तौल
निकालकर) गोली मार दूँगा...गोली !

नौकर : (प्रवेश कर) हुजूर, दोनों कैदी हाजिर हैं !

मानसिंह : कौन कैदी ? ओ...वो । (सिर हिलाता हुआ)
अच्छा...ले आओ । (एक सिपाही पाठक और जैत को
रस्सी से बाँधकर ले आता है) आ गये तुम बगला
भगत ! देखो ! मैं तुम्हारा शत्रु नहीं, मित्र हूँ...मित्र...
इसीलिये कहता हूँ...ये खराब धन्धे छोड़कर दारू
(दिखाकर) पियो...दारू...सच कहता हूँ, बहुत मजा
आवेगा । बहुत...दाखाँ रो दारू...नै...बगल में मारू
(जैत की ओर) पियेगा !

जैत : गाँववालों को तो सूखी रोटी और थोड़ा सा पानी
चाहिये महाराज ! दारू तो आप लोगों के लिये...

मानसिंह : (मद्यप सा हँसता है) हँ...हँ...हँ...अ...ठीक कहता
है तू । बहुत अच्छा है तू । तब तो मैं तेरे गाँव में...
जरूर...दारू की भट्टी...लगवा दूँगा । नहीं...दारू
का...पातालतोड़ कुआँ खुदवा...दूँगा । घर-घर में...
दारू के नल लगवा दूँगा, उस सेठ को मिल मत
खोलने देना । (प्याला आगे कर) ले पी तो ! नहीं
पियेगा ? जानता है, क्या सजा होगी ? (पाठक से) तुम
पियोगी सफेद टोपी वाली प्यारी !

पाठक : धन्यवाद !

मानसिंह : धान बाद ! धान तो बाद में ही उगेगा । धान के पौधों को दारू से सींचूँगा... दारू से... ए... क्या धरा है इसमें... तुम... काँग्रेसी... इ... लोगों को... बहकाता हूँ... और... अपना उल्लू सीधा करता हूँ... और... ऊपर से ऐंठ लगाता हूँ... के हम दारू ना पीता हूँ... । (ऊपर घूरता हुआ) हूँ... (सिपाही से) ले जा इनको... एक-एक को चार-चार... बोतल पिलाकर... दारू के ढोल में उतार दे... (सिपाही दोनों को ले जाता है)

नौकर : (आकर) हजूर ! सम्पादक...

मानसिंह : हआँ, कौन ? सम्पादक अभी फुरसत... नहीं हूँ... ।

नौकर : हजूर, कहता है बोत जरूरी काम है, बिगड़ जायगा ।

मानसिंह : बिगड़ जायगा ?... तो बिगड़ जाने दे, हूँ... अच्छा ! आने दे । (नौकर जाता है)

सम्पादक : (प्रवेश कर) नमस्कार ।

मानसिंह : (पीकर) आइये सम्पादन कारक जी, तुमारी ही कमी थी । प्याला (बढ़ाता हुआ) लो पियो, बोत बरस जियो ।

सम्पादक : क्षमा कीजिये, मैं मदिरा नहीं पीता ।

मानसिंह : जीते रहो, भूट मरो, गंगाजल है... ममदिराँ नन्हीं हूँ... दोस्त ! ज्जेल में तो पी थी ।

सम्पादक : कोई अन्याय करे, तो क्या किया जा सकता है ?

मानसिंह : देशस्सेवा, हूँ... ? ज्जेल में तो अन्याय से पिलाई थी और अब... न्याय से पिलाता हूँ, सच्चे दिल से

पिलाता हूँ...प्पियो... ।

सम्पादक : नहीं, धन्यवाद । मैं तो इधर आना ही नहीं चाहता था ।

मानसिंह : तो फिर मेरे बाप का करियावर करने आये हो, दाल-भात में मूसरचन्दजी !

सम्पादक : आप जानते हैं, देश का घटना-चक्र बड़ी तेजी से घूम रहा है ।

मानसिंह : हाँ...हाँ...मेरे सिर जैसे...मालूम होता है...तुम और मैं...दोनों एक ही मर्ज के ममरीज हैं । तभी... तुमारे...और मेरे...दोनों के दिमागों में कोई (उँगली को घुमाता हुआ) चक्कर चल रहा है ।

सम्पादक : अब देश शीघ्र ही स्वतन्त्र हो जायगा, और ये अंग्रेज यहाँ से चले जायेंगे । राजा-महाराजाओं का अस्तित्व मिट जायगा । मैं आपके भले के लिये कहता हूँ । ये जागीरें भी न रहेंगी, तब यह मदिरा आपको बहुत दुख देगी ।

मानसिंह : मदिरा का दुख तो...अमृत-सा मीठा होता है । देने दो उसे दुख...तुम्हें क्या ? रही बात अंग्रेजों के जाने की, सो तो सफेद भूँठ...सफेद भूँठ । कांग्रेस की सफेद टोपी की तरह...अंग्रेज जा नहीं सकता...और...जायगा तो...कोई दूसरा आ जायगा । तुम सफेद टोपीवाले क्या राज कर सकते हो ? आपस में लड़ मरोगे...और... तुम पर कोई तीसरा ही आ बैठेगा ।

सम्पादक : देखिये, इसकी बहुत शीघ्र घोषणा होनेवाली है ।

मानसिंह : देख भी लिया और सुन भी लिया ।

सम्पादक : और गुमानपुरा से जो शिकायत आई है, उसे मैं दिल्ली भेज रहा हूँ । हिन्दुस्तान टाइम्स में छपने । जनता निष्पक्ष जाँच करवायगी ।

मानसिंह : हैं, कौनसी खबर ? आपके पास भी पहुँच गई... सम्पादक तो कब्रस्तान में भी पहुँचकर गड़े मुर्दे उखाड़ लाते हैं ! (एक प्याला पीता है)

सम्पादक : जी हाँ, लोजियें (लिखित संवाद देता है)

मानसिंह : (लेकर पढ़ता हुआ) हैं !

सम्पादक : कहिये, श्रीमान् इस विषय में क्या फरमाते हैं ?

मानसिंह : (कुछ सँभलकर) बिल्कुल भूँठ...मैं तो वहाँ गया ही नहीं...और...गया तो...गोली तो...चलाई ही नहीं...और...और...अगर गोली...कोई...चल भी गई तो...हूँ...उससे मनुष्य तो नहीं मरा होगा...कोई...भूखा भेड़िया...मरा होगा, भूखा भेड़िया...और अगर...कोई मर भी गया तो...एक...से ज्यादा तो नहीं...

सम्पादक : दस का एक बताना तो सरकारी नीति है ।

मानसिंह : इसलिए कि तुम एक का दस बताते हो ।

सम्पादक : बिल्कुल नहीं, आपके अन्यायों की शिकायतें मेरे पास आ चुकी हैं, मैंने उन्हें छिपाकर आपकी प्रतिष्ठा बनाए रखी है । इस बार जनता चाहती है कि यह समाचार दिल्ली के पत्रों में प्रकाशित हो ।

मानसिंह : ऐसा...तो...नहीं होना चाहिये यार ! (पीता है)

सम्पादक : आप 'जनता' के लिए कुछ चन्दा-वन्दा भी नहीं देते ।

मानसिंह : मैं तो जनता का सेवक हूँ ...जनता मेरे लिये...चन्दा करती है...उसी से मैं अपना पेट पालता हूँ । जनता मेरी...और...मैं जनता का...

सम्पादक : वह जनता नहीं, 'जनता' मेरा पत्र है ।

मानसिंह : ओ, ऐसा ! उसके लिए आप चार आने ले जाइये ।

सम्पादक : एक पूँजोपति को किसानों की भूमि बेचकर पचास हजार की वार्षिक आय बना ली और जनता के लिए केवल चार आने चन्दा ! ऐसी क्या छोटी बात की आपने भी । चार आने तो आप वेश्या को भी नहीं देते होंगे ।

मानसिंह : वेश्या की क्या बराबरी करेंगे आप ?

सम्पादक : हम आपका भविष्य सुधारते हैं और वह बिगाड़ती है ।

मानसिंह : आप क्या जानते हैं ? खैर जाने भी दो, चार आने नहीं, छे आने ले जाइये ।

सम्पादक : नहीं, जाने दीजिये इसकी आवश्यकता नहीं ।

मानसिंह : ठीक, जाने दो । जाइये आप भी । नमस्ते ।

सम्पादक : नमस्ते ! (उठकर) मुझे क्या, संवाद दिल्ली भिजवा दूँगा ।

मानसिंह : ऐसा मत करना यार !...

सम्पादक : तो 'जनता' के लिए पच्चीस रुपया लिख दूँगा आपको ओर से । दानदाताओं की सूची में आपका नाम सबसे ऊपर आना चाहिये और आपका फोटो भी छाप दूँगा और यह समाचार जनता में ही इस प्रकार छाप दूँगा

कि राजा साहब इस घटना को झूठ मानते हैं । वे तो इससे और अधिक चिन्तित हैं ।

मानसिंह : हाँ, यह तो लिखिये जरूर पर पच्चीस रुपये नहीं दूँगा ।

सम्पादक : अच्छा, छोड़िये, ग्यारह अभी दिलवा दीजिये, भगड़ा मिटे ।

मानसिंह : (मदिरा पीता हुआ) नहीं, नहीं ।

सम्पादक : बस, बस ठीक है (नौकर से) जाओ खजांची को बुला लाओ ।

मानसिंह : एँ, ठहर । अच्छा खजांची से ग्यारह दिलवा दे ।
(संवाद को जेब में रखता हुआ) अच्छा नमस्ते ।

सम्पादक : नमस्कार ! (जाता है)

चम्पालाल : (संवाददाता को लेकर आता है) हुजूर, यह संवाद (वह अपूर्ण संवाद देता है) और यह संवाददाता ।

मानसिंह : (जेब से संवाद निकालकर दोनों को मिलाता हुआ)
क्यों बे, हरामखोर ! (मदिरा पीकर) यह तो तूने ही लिखा है । मेरा नमक खाकर सम्पादक से जा मिला ।

चम्पालाल : मैं नहीं, हुजूर ! यह... (संवाददाता की ओर संकेत करता है)

संवाददाता : हुजूर, मेरा कोई दोष नहीं ।

मानसिंह : (मदिरा पीकर) हाँ...ते...ए...रा...कोई दोष नहीं ।

दोष इसका है । दोनों पर एक ही तरह की...लिखा-वट है और इस पर तो तेरे हस्ताक्षर हैं, चम्पालाल !

चम्पालाल : हुजूर, ये इस छोकरे ने लिखे हैं ।

संवाददाता : हजूर मेरा नाम चम्पालाल नहीं, देवीलाल है। यह मुझे डरा-धमकाकर यहाँ ले आया है। आप दयालु हैं। मेरा न्याय कीजिये, मैं आपका बच्चा हूँ।

मानसिंह : (हँसता हुआ) हँ हँ हँ हँ अँ...तूँ...बच्चा...बहोत अच्छा। मैं दयालू हूँ...मैं तेरा... न्याय (पीता हुआ) एँ !... (नौकर आता है) इस चम्पालाल को भी दारू के ढोल में उतार दो। और, तुम (संवाददाता से) जाओ, तुम...मेरे बच्चे हो...हँ हँ हँ हँ अँ... (संवाददाता जाता है और चम्पालाल को नौकर पकड़कर ले जाता है) कहाँ...से बलाएँ...आ जाती हैं।

नौकर : (प्रवेश कर) हजूर ! सेठ साहब पधारे हैं।

मानसिंह : हँ...फिर ! अच्छा, (थोड़ा रुककर) उसके साथ वो है ? तो...आने दो।

[नौकर जाता है और सेठ लखमीचन्द
के साथ निर्मला का प्रवेश]

लखमीचन्द : नमस्कार, राजा साहब !

मानसिंह : (निर्मला की ओर देखकर) नमस्ते, निर्मला बाईजी !

निर्मला : नमस्ते !

मानसिंह : बैठिये, बैठिये, माताजी का प्रसाद लीजिये।

लखमीचन्द : नहीं, धन्यवाद।

मानसिंह : नहीं, तो बाहर जाइये। (सेठ बिगड़कर बाहर जाने को उठता है। निर्मला के मुड़ते ही) तुम भी जाओगी, निर्मला...

निर्मला : क्षमा कीजिये !

मानसिंह : अच्छा, किया क्षमा । अब तो बैठिये सेठजी... (सेठ बैठता है) निर्मला खड़ी रहती है । अब तो बैठो निर्मला, नाराज हो गई ? हँहँहँहँ...गाना आता है तुम्हें ?

निर्मला : (क्रोध में) जी हाँ, आता है ।

मानसिंह : (आवेश में) बिगड़ो मत, अब तुम्हें वहाँ मिल लगाने की कोई जरूरत नहीं, मैं वहाँ दारू का पातालतोड़ कुआँ खुदवा रहा हूँ । दारू की भट्टी लगवा रहा हूँ ।

लखमीचन्द : दारू की भट्टी तो मुझे वैसे ही वहाँ लगानी पड़ेगी, राजा साहब ! उसके बिना मिल-मजूरों को जीवन कैसे मिल सकता है ?

मानसिंह : (तैश में) नहीं, तुमारी मिल से मेरा लगान बन्द हो जायगा, पर मेरी दारू की मिल से लगान बढ़ेगा ।

लखमीचन्द : तो राजा साहब, जेब से कागज निकालकर इस एग्रीमेन्ट पर हस्ताक्षर...

मानसिंह : (लेकर पढ़ता हुआ) यह तो मिल का एग्रीमेन्ट है, मैं तो नहीं करता ।

लखमीचन्द : तो राजा साहब आज तक की बात बेकार गई ।

मानसिंह : बिलकुल बेकार ।

लखमीचन्द : ऐसा तैश न कीजिये भगवान के लिये ।

मानसिंह : भगवान...हँ हँ हँ हँ हँ...भगवान तो (पीकर) दारू में है । उसे मैं...पी गया । अब तो मैं भगवान हूँ । अब मेरे लिये कहिये, मेरे...लिये... ।

लखमीचन्द : अच्छा आप ही के लिये सही, (जेब से दो हजार के नोट निकालकर टेबुल पर रखता है) लीजिये, यह मेरी भेंट (जेब से पेन निकालकर) अब तो कृपा कर हस्ताक्षर फरमाइये । आपके लिये ही सही ।

मानसिंह : अच्छा, तो कल कर दूँगा । (पीकर) अभी मैं नशे में हूँ ।

लखमीचन्द : कौन कहता है आप नशे में है । आप तो बिलकुल होश में हैं ।

मानसिंह : अच्छा, तो कल और अधिक होश में रहूँगा (एक प्याला भरकर लो) अब तो पियो यार !

लखमीचन्द : जी नहीं, मैं नहीं पीता ।

मानसिंह : (स्वयं पीता हुआ) नहीं...पीता...तो...चले जाओ यहाँ से...पर...तुम...मत...जाना निर्मला...

निर्मला : आप होश में बात कीजिये ।

मानसिंह : इसीलिये तो मैं कहता हूँ...कल कर दूँगा...अभी मैं...होश में...नहीं हूँ । (प्याला आगे बढ़ाता हुआ) पियो...नहीं तो चले जाओ...यहाँ से,

लखमीचन्द : नहीं, मैं नहीं पीता । वह कागज दीजिये । (मानसिंह टेबुल पर से नोट उठाने लगता है कि उससे पहले वह उठा लेता है)

मानसिंह : ये कहाँ ले जाते हो...तुम ? अरे यार...नाराज...हो गये...अच्छा...मैं अभी हस्ताक्षर करता हूँ (सेठ नोट टेबुल पर रख देता है) पर समझौते पर हस्ताक्षर करने से पहले उसकी खुशी में थोड़ा सा पीलो...उठ

कर गले में हाथ डालता हुआ खुशी का मौका है...
(प्याले में मदिरा डालकर सेठ के मुँह पर लगाता
हुआ) लो, लो ?

लखमीचन्द : (हाथ से हटाता हुआ) नहीं, नहीं ।

मानसिंह : फिर...नहीं...लो, लो । तुम्हें मेरी...क़सम (सेठ
इन्कार करता है पर मानसिंह बार-बार कहकर
उसको विवश कर देता है । सेठ प्याला हाथ में लेता
है । दोनों प्याले एक दूसरे से मिलाते हैं) भगवान...
हमारा...मिल सफल हो...(दोनों पीने लगते हैं)

निर्मला : (बीच में आकर रोकती हुई) पापा, घर चलिये ।

मानसिंह : तुम...बैठ जाओ...लड़की... (दूर हट जाती है ।
लखमीचन्द को एक प्याला पिला देता है और दूसरा
प्याला भरता हुआ) और लो...

लखमीचन्द : बस, बस !

मानसिंह : अरे क्या बस, बस ! जहाँ एक लादी वहाँ सवा लादी ।
लो ।

लखमीचन्द : बस, बस । (पीता है । इस प्रकार 'बस बस' करता
हुआ पीता जाता है, मानसिंह और वह दोनों मिलकर
सारी बोतल खाली कर देते हैं)

मानसिंह : लाओ अब...हस्ताक्षर...कर दूँ...पर...इसमें दारू
की मिल और...पातालतोड़...कुएँ...के लिये भी
लिख दो ।

लखमीचन्द : (नशे में) नहीं, मैं...उन...खेतों में...बकरो...
के बाग...लगा दूँगा...और लगा दूँगा...रेडियो भी...

जो दुनिया भर की...रंडियो का...गाना...सुनाया
करेगा ।

मानसिंह : वाह यार खूब...

लखमीचन्द : और नहीं तो क्या ?

मानसिंह : तो लिखो अभी...इस कागज पर...

लखमीचन्द : अभी नहीं...अभी मैं होश...में...नहीं हूँ ।

मानसिंह : कौन कहता है...तुम होश में...नहीं ओ...तुम तो...
मेरी तरफ...बिलकुल...होश में ओ...

लखमीचन्द : कल और ज्यादा होश...में...रहूँगा...कल...
जरूर...लिख दूँगा ।

मानसिंह : (पिस्तौल निकालकर) कल नहीं...अभी लिखो...
अभी...उँ, उँ मैं के ता ऊँ अभी करो...

लखमीचन्द : अरे...बाप रे...

निर्मला : (आगे आकर पिस्तौल पकड़कर तथा सेठ को उठाकर)
चलिये :।(ले जाती है)

मानसिंह : (देखता रहता है) तुम भी ...जा...रही हो...प्यारी
निर्मला ! (पीता है)

निर्मला : होश में बात कीजिये !

मानसिंह : उँ उँ मैं केता हू...तुम मत जाओ ।

निर्मला : अच्छा मैं आती हूँ, इन्हें गाड़ी में बिठाकर । (प्रस्थान)

मानसिंह : (सोचता हुआ) तुमने...मेरा हाथ...पकड़कर...अच्छा
नहीं किया...अच्छा किया...अच्छा मेरी जान (निर्मला
का प्रवेश) आ...गई तुम ! बैठ जाओ...तुम बोल...
अच्छी हो निर्मला...आओ...तुम गाना...आता है...

निर्मला : जो हाँ, (नौकर से) तुम यहाँ से जाओ ।

मानसिंह : हाँ...जाओ...बोत अच्छी ओ तुम...और...नाचना भी...हँ हँ हँ...

निर्मला : (मुस्कराती हुई) हाँ, कुछ-कुछ ।

मानसिंह : ओ, हँ हँ हँ हँ अँ...तो फिर हो...जाय...एक...लो तुम भी पियो ।

निर्मला : (मदिरा लेकर) लीजिये पहले, आप पीजिये ।

मानसिंह : अरे, तुम...पिलाओगी...हँ हँ हँ हँ...तो...जरूर, पिऊँगा । (पीता है) और पिलाओ...खूब पिलाओ...भर भर...कर...पिलाओ...मेरी जान... (निर्मला इतना पिलाती है कि वह उन्मत्त हो उठता है)

निर्मला : (उसका हाथ पकड़कर उसकी जेब से पिस्तौल और कागज निकाल लेती है । फिर उसकी छाती पर पिस्तौल रखकर पैन देती हुई) हस्ताक्षर करो इस पर !

मानसिंह : (बेहोश-सा) उँ हुँ...कल करूँगा ।

निर्मला : मैं कहती हूँ, जोना चाहते हो तो अभी करो हस्ताक्षर !
[हाथ में पैन पकड़वाकर स्वयं हस्ताक्षर करवाती है ।
एक प्याला और पिलाकर सुला देती है । टेबुल पर पड़े नोट आदि लेकर चल देती है]

पाँचवाँ दृश्य

[चौड़े रास्ते पर एक खुला चौक । बहुत से दर्शकों की भीड़ । कुछ लोग आ-जा रहे हैं । दो सिपाही भीड़ को वश में करने का प्रयत्न कर रहे हैं । उनके हाथों में डण्डे हैं, जिनको

वे लोगों पर उठा-उठाकर डालते हैं और कभी-कभी किसी के मार भी देते हैं । तीन व्यक्ति दारू के तीन ढोल लेकर आते हैं । एक व्यक्ति उन्हें उतरवाकर रखवाता है । तीनों ढोलों के मुँह खोल दिये जाते हैं, जिनकी दुर्गन्ध से लोग नाक बचाने का प्रयत्न करते हैं । दारू के ढोल लाये जा रहे हैं]

प० सिपाही : लाओ यहाँ रखो (तीनों ढोल बीच में रखे जाते हैं । एक व्यक्ति जैत, पाठक और चम्पालाल को कोड़े मारता हुआ लाता है ।)

दू० सिपाही : (पाठक को ढोल की ओर संकेत करता हुआ) उतरिये महाराज, इसमें । सफेदपोशजी ! पदार्पण कीजिये गंगाजल में !

पाठक : नहीं, यह अपमान हम सहन नहीं करेंगे ।

व्यक्ति : तो कोड़े सहन कीजिये । (कोड़े मारता है)

प० सिपाही : (जैत को लात मारकर ढोल की ओर ढकेलता हुआ) उतर बे गँवार, अकाल-पीड़ित ! बरसों से तुम्हें पानी नहीं मिला है, आज तुम्हें गंगाजल में स्नान करा दूँ ।

जैत : गंगाजल तो शहरवालों के पाप धोने को चाहिए, अकाल-पीड़ित को तो सूखी रोटी और कुएँ का पानी चाहिए जमादारजी !

व्यक्ति : (पाठक को छोड़ जैत को कोड़े मारता हुआ) रोटी न सही, कोड़े ही खा ले !

जैत : आप इतना कष्ट क्यों करते हैं ? आप थक जायेंगे ।

व्यक्ति : (कोड़े मारता हुआ) बड़ा दयालू है !

दू० सिपाही : (चम्पालाल को लात मारकर) चल बे नमक-

हराम ! (एक लात और जमाकर) मालिक का नमक खाकर उसके ही विरुद्ध हो गया ! (जनता प्रसन्नता से तालियाँ पीटती है और कोलाहल करती है।)

चम्पालाल : मेरा कोई दोष नहीं है, मालिक !

व्यक्ति : (कोड़े मारता हुआ) तेरा कोई दोष नहीं ! (और अधिक जोर से मारता हुआ) दोष तो इस (मारता है) कोड़े का है ! (मारता है)

दू० सिपाही : अब तो प्रवेश कीजिये खद्दरजी महाराज !

व्यक्ति : नहीं, नहीं, पहले इस जैन को खिलाओ गोते ! (दोनों जैत को पकड़कर उलटे सिर दारू के ढोल में उतारने के लिए उठाते हैं। पहला सिपाही सहायतार्थ आकर जैत की टाँगें उठाता है। इस प्रकार तीनों उसे ढोल में उतारने की चेष्टा करते हैं।)

पाठक : अरे यह क्या करते हो ?

चम्पालाल : छोड़ दो बेचारे को !

(सब लोग चिल्लाते हैं। भीड़ में से निर्मला हवाई फायर करती हुई निकल आती है। दोनों सिपाही जैत को छोड़ देते हैं और वह व्यक्ति जैत को छोड़कर ढोल की आड़ में छिप जाता है। निर्मला एक भयानक आकृति बनाये हुए पुरुष वेश में तीनों व्यक्तियों को पिस्तौल दिखाती हुई उनको ढोल उठाने का आदेश देती है। वे ढोल उठाकर ले जाते हैं। फिर वह दर्शकों को पिस्तौल का लक्ष्य बनाकर कहती है)

निर्मला : बड़ी लज्जा की बात है कि मनुष्य होकर आप मनुष्य

के जीवन को खिलवाड़ समझते हैं ! मनुष्य मनुष्य के साथ इस प्रकार घृणाजनक व्यवहार करता है ! यह पाशविक व्यवहार आपके मनोरंजन का विषय हो रहा है । कोई भी आगे आकर इस गरीब को बचाने का प्रयास नहीं करता ! कायरो ! (क्रोधावेश में) एक मिनट का समय देती हूँ, हट जाओ यहाँ से, नहीं तो एक-एक को गोली से भून दिया जायगा ! (जैत और पाठक के अतिरिक्त सब भाग जाते हैं । निर्मला जब से दो हजार के नोट निकालकर जैत को देती है । पाठक मुख देखता रहता है) लो जैत, यह तुम्हारे गाँव की सहायता के लिए.....

जैत : तुम, निर्मला !

निर्मला : चलो यहाँ से । चलिये पाठकजी !

छठा दृश्य

[गुमानपुरा गाँव में एक नवीन पाठशाला का आयोजन । उद्घाटन-समारोह की तैयारी । पाठशाला में कुछ छोटे-छोटे बालक और बालिकाएँ हैं । कुछ बड़े भी हैं और कुछ युवक भी । आयोजन छोटा और देहाती ढंग का है । एक छप्पर वाला आँगन, उसके बाहर एक खुला चौक । आँगन में एक आसन के सम्मुख एक छोटी-सी चौकी, पास में दीवट पर दीपक । बस, ये ही सब कुछ हैं । एक पण्डित पूजा की सामग्री के पास बैठा है । उसके सामने ही एक बड़ी चौकी पर सरस्वती का चित्र रखा है । चौक में गाँव के स्त्री-पुरुष बैठे हैं । जैत और पाठक भी वहीं बैठे हैं ।]

पण्डित : (उठकर दीपक जलाता हुआ) —

ॐ असतो मा सद्गमय

तमसो मा ज्योतिर्गमय

मृत्योर्मा अमृतं गमय ॥

[बैठकर सरस्वती की पूजा करता है । सब बालक प्रार्थना करते हैं]

प० विद्यार्थी : बहिनो और भाइयो ! आज बड़े हर्ष की बात है कि हमारे गाँव में भी एक पाठशाला खुल गई है । अब हमारे गाँव में कोई अशिक्षित नहीं रहेगा । यह सब पाठकजी की कृपा से हुआ है । मैं पाठकजी से प्रार्थना करता हूँ कि आज के कार्यक्रम में वे सभापति का आसन ग्रहण करें ।

प० बालिका : मैं इसका समर्थन करती हूँ ।

[पाठक आकर आसन ग्रहण करता है]

पाठक : बालको ! अपना काम आरम्भ कीजिये ।

प० बालक : भाइयो, मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि पूँजीवाद बहुत बुरा है । इसका मतलब है.....इसका मतलब है, इसका मतलब....यह है....कि....गरीबों का खून चूसना.....(जाकर बैठता है)

दू० बालिका : अरे पूँजीवाद बुरा होता तो यह पाठशाला किससे चलती ? इसीलिए मैं कहती हूँ कि पूँजीवाद बुरा नहीं है । (भाग जाती है)

दू० बालक : मैं तो कहता हूँ कि पूँजीवाद न तो खराब है न अच्छा ; खराब तो है साम्राज्यवाद अर्थात् अंग्रेजी

राज्य ! (बैठने लगता है उससे पहले ही)

ती० बालक : (उठकर आवेग में) हाँ भाइयो, (तना हुआ मुक्का उठाकर) साम्राज्यवाद ही हमारे कष्टों की जड़ है पर पूँजीवाद भी हमारी बरबादी का कारण है।

चौ० बालक : भाइयो ! पूँजीवाद और साम्राज्यवाद चाहे खराब हो या अच्छा, हमें इससे क्या ? गांधी जी का आदेश है कि विद्यार्थियों को राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए। रोज उठकर व्यायाम करो और खूब पढ़ो, तो यह सब समझ में आ जायगा कि क्या अच्छा और क्या बुरा है ? (सीटी बजती है और कुछ बालिकाएँ और बालक आते हैं। शारीरिक व्यायाम का प्रदर्शन होता है)

जैत : (लोगों के बीच से आकर) भाइयो, आज भगवान की कृपा से हमारा गाँव फिर से हरा-भरा हुआ, सावन के उमड़ते मेघों ने हमारे उजड़े खेतों को फिर से नई हरियाली से लहरा दिया, इसके लिए हमें इन्द्र राजा से प्रार्थना करनी चाहिए। (सभी हाथ जोड़कर सिर झुकाते हैं।) हम प्रति वर्ष आज के दिन वर्षा का उत्सव मनाया करेंगे। इसका दूसरा कारण भी है। आज हमारे गाँव में ज्ञान का पहला दीपक जलाया गया है। ज्ञान का यह प्रकाश हमारे अज्ञान को प्रति दिन नष्ट करता चला जायगा और उसका प्रकाश दूर-दूर तक फैलेगा, यही भगवान से प्रार्थना है। अन्त में, मैं पाठक जी के प्रति आभारी हूँ। इन्हीं ने यह ज्ञान

की ज्योति यहाँ जलाई है । धन्यवाद ! (बैठता है)

पाठक : बहनो और भाइयो, अनेकों कठिनाइयों का सामना कर हम आज इस स्थिति पर पहुँचे हैं, यह हमारे अहिंसात्मक युद्ध का फल है, पर कठिनाइयाँ अभी समाप्त नहीं हो गई । हमें साहस से काम लेना होगा, बापूजी का यही सन्देश आपके लिए है । मैं जब-जब उनके पास जाता हूँ, वे आपकी बातों को बड़े चाव से सुनते हैं । अन्त में वे यही कहते हैं कि अहिंसा से काम लो, तभी हमें रामराज्य, स्वराज्य, की प्राप्ति होगी । (दो सिपाही पिस्तौल लिये आते हैं)

प० सिपाही : ओ हो ! यहाँ तो रामराज हो गया है ।

जैत : (कुछ लोग जो डर गये हैं उन्हें हाथ से संकेत करके बैठाते हुए) पधारिये, आपके पधारने की तो मुझे आशा थी ही । कहिये क्या आज्ञा है ? महाराज !

दू० सिपाही : आज्ञा यह है कि तुम और तुम्हारा यह पाठक दोनों अपने-अपने कान पकड़कर खड़े हो जाओ !
(पिस्तौल हिलाता हुआ)

सब : नहीं, ऐसा हम कभी नहीं करने देंगे ।

प० सिपाही : (सब से) तुम सुनो, मेरी आज्ञा है कि (पिस्तौल दिखाते हुए) दो मिनट के अन्दर-अन्दर यहाँ से रफू-चक्कर हो जाओ । नहीं तो सबको चने की तरह भून डालूँगा ।

सब : हम नहीं जायेंगे ।

दू० सिपाही : मेरी आज्ञा है, एक मिनट में तुम दोनों कान पकड़-

कर खड़े हो जाओ ।

सिपाही : (पाठक की टांग पकड़कर घसीटता है) यह है सब भगड़ों की जड़ ! सबसे पहले इसी को खतम करना होगा । (भीड़ उत्तेजित होकर सिपाहियों पर लाठियाँ उठाकर बढ़ती है । सिपाही पिस्तौल ताने खड़े हो जाते हैं । इसी बीच में मानसिंह अपने कुछ लठैत लेकर आता है और सबके बीच में खड़ा हो जाता है)

मनसिंह : ठहरो, यह क्या हो रहा है ? (सिपाहियों से) तुम कौन हो ?

प० सिपाही : हम तो आपके ही सेवक हैं हजूर !

मानसिंह : यहाँ किसने भेजा है तुम्हें ?

दू० सिपाही : सुपरडेंट साहब ने, हजूर !

मानसिंह : सुपरडेंट ने किसकी आज्ञा से ऐसा किया है ? (बनावटी क्रोध दिखाते हुए) मेरी प्रजा को इस तरह परेशान करने वालों की कोई आवश्यकता नहीं ! मैं अभी उसको नौकरी से अलग करता हूँ, और तुम दोनों को भी । जाओ यहाँ से ! (अपने व्यक्तियों से) ले जाओ, इन दोनों को बेड़ी डालकर पींजरे में बन्द कर दो !

दोनों सिपाही : हम तो हुकम के गुलाम हैं हजूर ! हमारा कोई दोष नहीं ।

मानसिंह : ले जाओ यहाँ से ! (दो व्यक्ति दोनों सिपाहियों को ले जाते हैं । गाँव वाले के आगे सिर झुकाकर) जनता जनार्दन की जय हो !

सब : राजा की जय हो ! (पाठक और जैत आश्चर्य से देखते हैं ।)

मानसिंह : मैं तो जनता जनार्दन का सेवक हूँ । जनता मेरी अन्नदाता है, जनता के अन्न से मैं अपना पेट पालता हूँ । (एक स्त्री से) माँ जी, मुझे भूख लगी है, एक सूखी रोटी तो खिला दो । (स्त्री रोटी लेकर आती है और थाल में परोसती है । मानसिंह खाता है । इधर उसके व्यक्ति गंगाजल के नाम से लोगों को मदिरा पिलाते हैं । पहले वे उनसे आरम्भ करते हैं जो पुराने पिय-क्कड़ हैं) जो इन रोटियों में है वह अमृत में भी नहीं ।

सब : हाँ, अन्नदाता !

मानसिंह : आज से तुम्हारे और मेरे सब पाप धुल गये । गंगा-जल पीकर सब पवित्र हो गये ।

सब : हाँ, अन्नदाता !

मानसिंह : तो आज से तुम मेरे भाई और मैं तुम्हारा भाई ।

सब : हाँ...आँ... (नशे में)

मानसिंह : तो तुम मेरा दुख सुनो और मैं तुम्हारा (जैत के गले में हाथ डालकर) क्यों भाई जैत, ठीक है न ?

जैत : हाँ, राजा साहब हम गाँव वालों में न तो इतनी अकल है और न इतनी चालाकी और न इतनी सभ्यता कि गंगाजल...

मानसिंह : (बीच ही में बात काटकर) हाँ, ठीक है, तुम गंगा-जल नहीं पिला सकते और तुम सब भोले हो । (सब से) हो न ?

सब : (नशे में) हाँ...

मानसिंह : और मैं तुम्हारा भाई हूँ । तुम्हारा दुख मैं सुनूँ
और मेरा दुख तुम सुनो । तुम्हारे और मेरे बीच में
तीसरे आदमी के पड़ने की कोई जरूरत नहीं ।

सब : (एक दूसरे से) हाँ...कोई जरूरत नहीं ।

मानसिंह : तो इस परदेशी पाठक को निकाल दो यहाँ से
पहले, फिर मैं अपना दुख सुनाऊँगा ।

सब : (एक दूसरे से) ठीक है, निकाल दो ! निकाल दो !

मानसिंह : तो निकाल दो ! (कुछ लोग उठते हैं और पाठक
को निकाल देते हैं)

जैत : ठहरो ! यह क्या कर रहे हो ?

एक व्यक्ति : कुछ नहीं, निकालो । पीछे सुनेंगे जैत तुम्हारी
बात, अभी नहीं ।

मानसिंह : (पाठक को निकाल देने के पश्चात्) अब सुनो, तुम्हें
पंचायती राज चाहिए न ?

सब : हाँ ।

मानसिंह : तो आज से तुम्हें पंचायती राज देता हूँ । उसके लिए
पहले अपना कोई एक सरपंच तो चुन लो ।

कुछ लोग : जैत...

मानसिंह : जैत...ठीक तो है, पर...गाँव के बड़े-बूढ़ों के रहते हुए
जैत का सरपंच रहना...

जैत : मुझे सरपंच बनने की इच्छा नहीं है ।

मानसिंह : शाबास, तुमने बड़ी समझदारी की । भाइयो, जैत
तो आप ही मना कर रहा है तो...आपकी राय में...
हेम जी कैसा रहेगा ?

सब : ठीक है हेमजी ! हेमजी...

मानसिंह : मैं हेमजी को सरपंच स्वीकार करता हूँ और आज से आपको पंचायती राज देता हूँ । हेमजी बड़े-बूढ़े हैं, ये आपको भी समझा सकते हैं और मेरा भी कान पकड़ सकते हैं । तो मैं आज्ञा चाहता हूँ । (शीघ्र ही प्रस्थान कर जाता है । आगे-आगे जागीरदार और उसके पीछे सब लोग राजा की जय करते हुए जाते हैं । जैत रुक जाता है और अन्त में कुछ विचारता हुआ दूसरी ओर चला जाता है ।)

सातवाँ दृश्य

[गाँव के बाहर का रास्ता । मानसिंह को पहुँचाकर सब लोग गाँव की सीमा से लौट रहे हैं । दूसरी ओर से पाठक और जैत आ जाते हैं ।]

हेमजी : गाँव की सीमा में पैर रखा तो सिर तोड़ दूँगा, पाठकजी ! अब हम तुम्हारे बहकाये में नहीं आयेंगे ।

सब : हाँ, अब नहीं आयेंगे ! अब हमें पंचायती राज्य मिल गया है ।

हेमजी : जैत, उठाले अपनी पाठशाला ! शहर में जाकर बिगड़ गया है ! गाँव में रहना है तो गाँव वालों की तरह रह, नहीं तो जा, उस सेठ की बाई की नौकरी करले !

जैत : मैंने दारू पीकर अपने को बेच नहीं दिया है ।

हेमजी : हैं ! किसने पीया है दारू ? क्या बकता है ? तुमने पीया है !

जैत : तुमने पीया है ।

हेमजी : मैंने तो नहीं पीया, और पीया तो पीया, जा ।

सब : दारू पीया कि गंगाजल ?

पाठक : देखो भाइयो ! (आगे बढ़ता हुआ)

हेमजी : आगे पैर रखा तो सिर तोड़ दूँगा ।

पाठक : कोई बात नहीं (एक व्यक्ति को) तुम आगे आओ ।

व्यक्ति : क्या है ? ये आया, लो !

पाठक : थोड़ा और आगे आओ ।

व्यक्ति : (आगे बढ़कर) क्या है ?

पाठक : तुम्हारे घर में कोई दारू पीता है ?

व्यक्ति : नहीं ।

पाठक : तुमने कभी पीया ?

व्यक्ति : नहीं ।

पाठक : तुमने कभी गंगाजल पीया ?

व्यक्ति : हाँ, आज पीया ।

पाठक : कैसा, मीठा लगा ?

व्यक्ति : नहीं, कड़वा, खट्टा, और चरका । ऐसा मालूम होता है जैसे बहुत दिनों का होने से बास आती हो ।

पाठक : अच्छा तुम जाओ (दूसरे व्यक्ति को) अब तुम आओ ।

दू० व्यक्ति : (आगे आकर) हाँ, बोलो साहब !

पाठक : तुमने कभी दारू पीया ?

दू० व्यक्ति : हाँ, मारा पिताजी गंगाजी गया उसके पेले पीया

था और गंगाजल भी वो लाया तब पीया ! पिता ने दारू की सौगन्द ले ली उससे अब बन्द कर दिया ।

पाठक : आज गंगाजल पीया या दारू ?

दू० व्यक्ति : था तो दारू, पर पी लिया सो पी लिया । राजा ने पिलाया सो पीया, अब क्या हो सकता है ?

पाठक : क्यों नहीं हो सकता ?

सब : हमें दारू पिलाया है (क्रोधावेश में परस्पर बातें करते हैं)

हेमजी : क्यों पाठकजी ! फिर बहका दिया ? जाओ यहाँ से, नहीं तो (लाठी उठाकर) सिर फोड़ दूँगा !

पाठक : अच्छा, जाता हूँ भाइयो । नमस्कार ! मैं देखता हूँ मेरी अब यहाँ कोई आवश्यकता नहीं रही । (जाता है)

हेमजी : हाँ, जाओ, अब जरूरत नहीं है तुम्हारी (जैत भी पीछे-पीछे जाता है, पर कुछ सोचकर फिर रुक जाता है)

सब : (एक दूसरे से) दारू पिला दिया, आँख में धूल डाल कर हमारा धरम बिगाड़ दिया ! जिसने हमारा धरम बिगाड़ा उसका हम घर बिगाड़ देंगे ।

एक व्यक्ति : (दूर से आता हुआ) सुनो गुमानपुरा के पंचो ! मैं एकलिंगपुरा से आ रहा हूँ । वहाँ के पंचों ने कह-लाया है कि आप लोगों ने फिर से दारू पीना शुरू कर दिया है । इसलिए आपके साथ हुक्का-पानी, बेंटी-व्यवहार, खाणा-पीणा सब बन्द होगा, सो जाणजो !
[सब उस ओर देखकर आश्चर्य में पड़ते हैं]

जैत : और भाइयो, आपके सरपंच हेमजी... (पास जाकर

बनावटी दाढ़ी खींचकर) यह देखो, कौन है? यह उसी जागीरदार का गुप्तचर चम्पालाल है।

सब : मारो ! देखो, भाग न जाय !

हेमजी : अरे बाप रे ! मुझे बचाओ !

जैत : (सब को) आप लोग शान्त हो जाइये। जो जहाँ खड़ा है वह वहीं खड़ा रहे। (सब वहीं खड़े रहते हैं)

एक व्यक्ति : अब क्या करे जैत ? हमने धोखा खाया, पाठकजी को बुलादो।

जैत : आप लोग चुपचाप मेरे साथ चलिये, अभी पाठकजी गाँव से दूर न गये होंगे।

सब : चलो, चलो ! जैत तुम हमारे हो, हमारे साथ रहना, अब तुम कहोगे वैसा करेंगे। [सब जाते हैं]

आठवाँ दृश्य

[मार्ग में एक ओर से संवाददाता और दूसरी ओर से गुप्तचर चम्पालाल आता है।]

चम्पालाल : कहिये संवाददाताजी, अब तो आपकी समझ में आ गई न ?

संवाददाता : हाँ भाई, आ गई।

चम्पालाल : देखो, काम तो तुम्हारा और मेरा एक ही है ! मेहनत मैं करूँ, जूते मैं खाऊँ, बदनाम मैं होऊँ और मजा करे वह जागीरदार !

संवाददाता : हाँ भाई, बात तो मेरी भी ऐसी ही है ! जान को खतरे में मैं डालूँ, संवाद मैं दूँ और कमाई करे वह सम्पादक।

चम्पालाल : यार, तुम्हारा मालिक भी मेरे मालिक जैसा ही दस नम्बरी धूर्त है ।

संवाददाता : अरे भाई, तुम्हारा मालिक दस नम्बरी है तो मेरा मालिक पूरा चार सौ बीस है ।

चम्पालाल : अरे वह तुम्हारा संपादक भी पूरा धूर्त है ! एक बार जेल गया तो पूरे दस हजार की थैली तैयार ।

संवाददाता : अरे उसके कमाने के कई हथकण्डे हैं ! तभी तो मैं कहता हूँ कि संसार भर के पत्र बन्द हो जायें पर इसका यह 'जनता' कभी बन्द नहीं होने वाला । घटनाएँ तैयार कर लेना, संवाद लिखवा लेना और उसके दम पर तुम्हारे मालिक जैसे दस नम्बरी से रुपया ऐंठ लेना उसके बाएँ हाथ का खेल है ।

चम्पालाल : और वह वेश्या...

संवाददाता : अरे कुछ मत पूछो ।

चम्पालाल : तो बोलो, तय रहा कि तुम अपना संवाद मुझे दो, और मैं अपना संवाद तुम्हें दूँ। इस प्रकार हम दोनों को उल्लू बनाकर काम निकालें ।

संवाददाता : हाँ, तय । जब भी कोई संवाद मिला तो तुम्हें दूँगा ।

चम्पालाल : तुम में विश्वास जमाने के लिए आज का संवाद मैं तुम्हें देता हूँ ।

संवाददाता : क्या ? (चम्पालाल उसके कान में कुछ कहता है) ओह, यह तो भयंकर है । तो चलूँ । (जाता है)

चम्पालाल : अच्छा नमस्ते ! (दूर पर संपादक को देखकर)

लो, वह संपादक आ रहा है । चलो, इसको भी उल्लू बनाया जाय ।

सम्पादक : (प्रवेश कर) कहिये गुप्तचर महोदय, क्या हाल है ?

चम्पालाल : (पैर छूकर) बचाइये, मेरे बच्चे मर जायँगे !

सम्पादक : मैंने क्या ठेका लिया है सबको बचाने का ?

चम्पालाल : देश-सेवा होगी, माई-बाप ! मुझे अपना संवाद-दाता बना लें, तो बड़ी कृपा होगी ! मैं कहीं का नहीं रहा ।

सम्पादक : तुम गुप्तचर और संवाददाता दोनों का काम करोगे ?

चम्पालाल : अब मैं गुप्तचर कहाँ रहा, पर मेरा अनुभव इसमें काम देगा, दोनों का उद्देश्य तो एक ही है ।

सम्पादक : क्या ?

चम्पालाल : विरोधी को सत्यानाशी की जड़ घोटकर पिला देना यह तो आपका बड़प्पन है । हँ हँ हँ हँ हँ...आप बड़े हैं जो चाहें सो कहें ! वह छोकरा आपका, संवाद-दाता, राजा साहब का बच्चा बन बैठा ! वह आपका क्या संवाददाता रहेगा ?

सम्पादक : वह तुमसे अधिक बुद्धिमान है ।

चम्पालाल : सो तो है ही, पर मेरा भी कुछ कल्याण कीजिये !

मुझे तो मार ही डाला उन्होंने ।

सम्पादक : तुम तो वैसे ही जीवित मुर्दे के समान हो ।

चम्पालाल : आप मुझ में ऐसा प्राण फूँक दीजिये कि मैं फिर से जीवित हो उठूँ और फिर कभी न मरूँ ।

सम्पादक : पर तुम में विश्वास कैसे किया जाय ?

चम्पालाल : मनुष्य ही तो मनुष्य पर विश्वास करता है ।

सम्पादक : मनुष्य ही तो मनुष्य को धोखा देता है ।

चम्पालाल : सुनिये एक गुप्त समाचार । आज वहाँ गोलीकाण्ड होगा, इससे आपको विश्वास आ जायगा ।

सम्पादक : यह तो मैं पहले से जानता हूँ, पर एक माह के लिए काम सीखना होगा, उसकी फीस दस रुपया होगी ।

चम्पालाल : अरे सरकार यह तो बहुत होगा, पर दूँगा महाराज । कल लेता आऊँगा महाराज !

सम्पादक : अच्छा ले आना । (दोनों जाते हैं)

नवाँ दृश्य

[स्थान-वही पहले दृश्य वाला । केवल अन्तर यह है कि अब वहाँ श्मशान के स्थान पर हरे-भरे खेत लहरा रहे हैं, कुएँ का पनघट चल रहा है, स्त्रियाँ खाली घड़े लेकर आती और पानी से भरकर ले जाती हैं । मन्दिर में आरती हो रही है...वृक्ष हरे-भरे हैं, कनेर फूल रहा है ।]

जैत : (फावड़ा लेकर प्रवेश करता है और चारों ओर प्रसन्न दृष्टि से देखता हुआ इधर-उधर घूमता है) सावन के एक काले मेघ में जीवन देने की जो शक्ति है वह सौ मनुष्यों के हृदयों में नहीं है ! मनुष्य-हृदय कितना कठोर, निर्मम और शुष्क है ? उसमें स्वार्थ और शोषण की प्यास कितनी प्रबल है ! अपने स्वार्थ की दृष्टि से ही वह सब कुछ देखता है ! (कनेर के पास

जाकर उसको देखकर भावुक-सा) तुम फिर खड़े हो गये, प्यारे कनेर ! एक दिन इसी कठोर हृदय ने तुम्हें जड़ से उखाड़ फेंका था । सोचा था, तुम्हें नष्ट करने से मेरी स्मृति भी नष्ट हो जायगी । इसीलिए तो हृदय को कठोर किया था, परन्तु यह पता न था कि प्रेम का अंकुर कुचल देने से अधिक हरा हो उठता है । किसने तुम्हें सींचकर खिलाया है ?

निर्मला : (साधारण वेश में प्रवेश कर) जैत, लो मैं आ गई, तुम्हारे उत्सव में भाग लेने ! (उसकी ओर देखकर) अरे तुम उदास क्यों हो ? मैं भी चलूँगी तुम्हारे साथ ! (कनेर की ओर देखकर) अरे यह कनेर तो अच्छा खिल रहा है, लाओ इसके फूल मेरे सिर में लगादो । (फूल तोड़ने बढ़ती है)

जैत : (आगे हाथ कर रोकता हुआ) रहने दो, जहाँ की चीज है वहीं खिलकर मुरझा जाय तो अच्छा है ।

निर्मला : (रुककर) ओ हो, तुम तो दार्शनिक बन रहे हो ! तब तो मैं तुमसे तत्त्वज्ञान सीखूँगी ।

जैत : हम देहाती क्या जानें, तत्त्वज्ञान ।

निर्मला : तो नाचना-गाना तो सिखाओगे न ?

जैत : हम गँवारों का नाच-गान आपको अच्छा लगेगा ?

निर्मला : लग जायगा । जाओ, ढोलक ले आओ ।

जैत : अच्छा । (जाता है । रूपाँ का प्रवेश । वह कुएँ से पानी निकालकर कनेर को सींचती है और उसे नमस्कार करके कुएँ पर जा बैठती है)

निर्मला : (रूपाँ के पास जाकर) तुम्हारा क्या नाम है ?

रूपाँ : रूपाँ ।

निर्मला : कितना सुन्दर नाम है तुम्हारा ! यह कनेर तुमने लगाया है ?

रूपाँ : हाँ ।

निर्मला : नाचना-गाना आता है तुम्हें ?

रूपाँ : हाँ ।

निर्मला : तुम भी आज नाचोगी ?

रूपाँ : हाँ ।

[जैत का ढोलक बजाते हुए आगे-आगे प्रवेश और उसके अखण्ड ज्योति लिये अन्य लोगों का गाते-बजाते हुए प्रवेश । जैत ढोलक बजाता हुआ और नाचता हुआ निर्मला के पास आकर आगे बढ़ जाता है, निर्मला भी उसके पीछे और उसके पीछे रूपाँ नाचती हुई जाती हैं । रूपाँ के पीछे अन्य लोग जाते हैं । अखण्ड ज्योति वाला व्यक्ति बीच में जाकर खड़ा हो जाता है । नाच समाप्त होने पर अखण्ड ज्योति को सब वन्दना करते हैं । संवाददाता समय-समय पर आड़ में खड़ा रहकर फोटो लेता रहता है । दो मजदूर आते हैं और कनेर के आस-पास खोदने लगते हैं ।]

जैत : (मजदूरों के पास जाकर) यह क्या कर रहे हो ?

प० मजदूर : नींव खोद रहे हैं ।

दू० मजदूर : मिल लगेगी ।

जैत : यहाँ मिल नहीं लगेगी, मत खोदो यहाँ ।

प० मजदूर : तुम ठेकेदार से बात करो, हम क्या करें ? (कनेर

को उखाड़ने लगता है)

जैत : यहाँ मिल नहीं लगेगी । मैं कहता हूँ यह कनेर मत उखाड़ो !

रूपाँ : (भीड़ में से सवेग बाहर निकलकर) इसको मैंने पानी पिलाकर बड़ा किया है, इसको उखाड़ोगे तो (कमर से हँसिया निकालकर) गर्दन उतार लूँगी ।
(जैत के मुख पर भावुकता और गंभीरता)

निर्मला : देखोजी, तुमको यहाँ किसने भेजा है ?

दू० मजदूर : सेठ लखमीचन्द ने ।

निर्मला : मैं उनकी लड़की हूँ । मैं आज्ञा देती हूँ कि तुम जाओ और उनसे कहदो कि यहाँ मिल नहीं लगेगी ।

दोनों मजदूर : (आश्चर्य से निर्मला को देखते हुए) हम नहीं जा सकते । राजा साहब की आज्ञा है, यहीं मिल लगेगी । हम यहाँ से नहीं हटेंगे ! (खोदने लगते हैं । एक फिर कनेर को स्पर्श करता है)

रूपाँ : (उसके पास जाकर) इसको फिर हाथ लगाया (हँसिया गर्दन पर रखकर) खींच लूँ गर्दन !

जैत : (आगे आकर) तुम ठहरो, अहिंसा से काम लो (रूपाँ को हटाता हुआ) देखो भाई ! तुम्हारे भी खेत होंगे, बाल-बच्चे होंगे ?

प० मजदूर : (हँसता हुआ) अरे हमारे बाल-बच्चे ! हम तो चलते-फिरते आदमी हैं, आज यहाँ तो कल वहाँ ।

दू० मजदूर : आज यहाँ, तो कल फिर कलकत्ते ।

निर्मला : तो तुम कलकत्ते से आये हो ?

प० मजदूर : हाँ ।

निर्मला : तो तुम पीछे चले जाओ, तुम्हारा सब खर्च मैं देती हूँ । (जेब से नोट निकालती हुई) लो कितने चाहिए ?

दू० मजदूर : नहीं, हम नहीं जायँगे, हमें यहीं रहने को कहा गया है ।

एक व्यक्ति : (लाठी लेकर बढ़ता हुआ) क्यों अकारथ अपनी जान गँवाँते हो ?

[एक सिपाही पिस्तौल दिखाता हुआ आता है । संवाददाता फोटो लेता है ।]

एक सिपाही : पहले अपनी जान बचाओ ।

जैत : (गर्व से गर्दन ऊँची कर) हम अपनी जान गँवाँकर भी यहाँ मिल न लगने देंगे । गरीब करसों की खेती उजाड़कर कोई सुखी न रहेगा ।

पाठक : (घबराया हुआ आकर) यह क्या कर रहे हो जैत, समझदारी से काम लो, सर्वनाश का भीषण षड्यंत्र तुम सबके सिर पर घूम रहा है । सब इस चक्र में पिस जायँगे ।

जैत : सब पिस जायँ, उसके बाद ही मिल खड़ी हो सकती है, पाठकजी ! इस गाँव का एक बच्चा भी जीवित रहेगा तो वह भी यहाँ मिल खड़ी न होने देगा ।

पाठक : जैत, थोड़ा सोचो तो, समय-समय पर सेठनी से हमें रचनात्मक कार्यों के लिए सहायता मिलती रही है, हम उनके आभारी हैं ।

जैत : पाठकजी, हमें गले तक उनके आभार का कर्जदार न बनाइये । मिल के मजदूरों की दुर्दशा आपसे छिपी

नहीं है। हमें न तो सेठ की सहायता चाहिए और न मिल ही। मिल के विचार ने हमारे जीवन को कितना दुखी बना दिया है।

सब : ठीक है, हम यहाँ मिल न लगने देंगे।

पाठक : भाइयो, आपके जीवन से खेलने के लिए भीषण षड्यंत्र की रचना हो चुकी है। व्यर्थ की भावुकता में आकर आप सर्वनाश को निमन्त्रण न दें। सेठजी हमारी अब तक सहायता करते आये हैं, आप उनके इस कार्य में बाधा न डालें। आप लोग शान्ति से यहाँ से चले जाइये। व्यर्थ की खून-खराबी से कोई लाभ नहीं, उसे बचाइये।

एक व्यक्ति : सुन लीं, हमने आपकी बातें। हमें सेठजी ने कोई सहायता नहीं दी ! अकाल के लिए उन्होंने आपको थैली भेंट की थी, कहाँ है ? हमने आपको ऐसा नहीं समझा था।

दू० व्यक्ति : अरे ! (भीड़ में से) अरे उससे तो पाठकजी की हवेली बनेगी, हवेली !

सब : हम यहाँ से नहीं जायँगे, हम मरने को तैयार हैं, हम यहाँ मिल न लगने देंगे।

पाठक : (सँभलकर भाव बदलता हुआ) तो आप वास्तव में मरने को तैयार हैं ?

जैत और निर्मला के साथ सब लोग : हाँ, तैयार हैं !

पाठक : (बदलकर) ठीक है, मुझे आपसे ऐसी ही आशा थी ! गांधीजी का यही आदर्श है। कायर की भाँति डरकर

भागने से तो साहस के साथ मरना अच्छा ! (आगे आकर) सबसे पहले मैं मरूंगा ! सिपाही ! चलाओ गोली, मुझ पर, हम यहाँ मिल न लगने देंगे ! (कुछ और भी सिपाही बन्दूकें लेकर आगे आ जाते हैं)

सिपाही : (पिस्तौल उठाकर) खूब रंग बदलना आता है !
(उत्तेजित भीड़ को) तुम लोग हट जाओ यहाँ से !

सब : (आगे बढ़ते और पाठक को बचाते हुए) इनके पहले हम मरेंगे ।

जैत : (आगे बढ़कर) गाँव का एक-एक बच्चा इन खेतों की रक्षा में मर जायगा, पर पीछे कोई न हटेगा ।

पाठक : मैं कहता हूँ (आगे आकर) यहाँ मिल न लगने दूँगा !
(जहाँ जमीन खोदी जा रही है वहाँ जाकर बैठता हुआ) पहले मेरी लाश यहाँ से उठेगी फिर मिल की नींव खुदेगी ।

सिपाही : (दूसरे साथियों से) देखते क्या हो ? बाँध लो इसे !
(दो सिपाही रस्सी लेकर पाठक को बाँधते हैं, लोग उस ओर बढ़ते हैं तो सिपाही एक हवाई फायर करता है) खबरदार ! (पिस्तौल सामने दिखाता हुआ) जिसको मरना हो वो सामने बढ़े ! (दोनों सिपाही पाठक को बाँधकर घसीटते हुए ले जाते हैं । रूपाँ हँसिया लेकर आगे बढ़ती है । सिपाही एक फायर करता है, पर वह बच जाती है । संवाददाता फोटो लेता जाता है । रूपाँ फिर दौड़कर हँसिया से पाठक के बन्धन काट देती है । सिपाही दूसरी गोली चलाता है जो

रूपाँ के सर पर लगती है और वहीं उसकी मृत्यु हो जाती है । रूपाँ को पकड़ने के लिए जाते हुए जैत के भी पैर में एक गोली लगती है । उत्तेजित भीड़ उस ओर दौड़ती है, लाठी चार्ज होता है, निर्मला 'जैत जैत' चिल्लाती हुई उसके पीछे दौड़ती है पर उसे पकड़ कर सब बचा लेते हैं । एक लाठी जैत के सिर में भी लगती है और कई व्यक्ति घायल होते हैं ।]

[पहला अंक समाप्त]

दूसरा अंक

पहला दृश्य

[स्थान : कमिश्नर का आफिस । कमरा अंग्रेजी ढंग का सजा हुआ है । कमिश्नर भी अंग्रेज हैं, चपरासी आकर कार्ड देता है ।]

कमिश्नर : (कार्ड देखकर) भेज दो ! (चपरासी का प्रस्थान और मानसिंह का प्रवेश । कमिश्नर उठकर हाथ मिलाता है ।)
गुड मॉर्निंग राजा साहब ! हाऊ डू यू डू ? बैठिये, बैठिये ।

मानसिंह : धन्यवाद ! (बैठता हुआ) कैसे याद किया साहब ने ?

कमिश्नर : हम को अफसोस होता हय राजा साहब ? (क्रोध में) आप लोगों को राज करने का तमीज नहीं आया ! बरा अफसोस होता हय ।

मानसिंह : क्या बात है साहब ?

कमिश्नर : आपको इसका कोई खबर नहीं होता ?

मानसिंह : मुझे तो कोई खबर नहीं ।

कमिश्नर : कैसे खबर होने सकता है, आप बोट शराब पीटा हय, फिर कैसे खबर होने सकता हय ! आपको समझा-समझाकर हम ठक गया ! पर, आपके कुछ समझ में नहीं आने सकता हय, नहीं छोरने माँगटा हय शराब ! (घंटी बजाता है । चपरासी आता है उसको कुछ लिख कर देता है) आपके खिलाफ बहोट भारी शिकायत है ।

मानसिंह : अब तो कोई शिकायत नहीं हो सकती, साहब !
लोग मुझसे सब खुश हैं, अब कोई शिकायत नहीं हो सकती ।

कमिश्नर : क्यों नहीं हो सकटी ? लोगों को शराब पिलाकर खुश करटा ह्य, और काँग्रेसो को शराब के ढोल में उटरवाटा ह्य ।

मानसिंह : यह सब गलत है साहब ! यह सब इन काँग्रेसियों का षड्यंत्र है । (चपरासी एक लिफाफा देता है और कुछ फाइलें भी लाकर रख जाता है)

कमिश्नर : (फाइलें दिखाता हुआ) ये सब गलट ह्य, काँग्रेसी भूठा नहीं होने सकटा । आपके खिलाफ बोट सीरियस चार्ज ह्य ।

मानसिंह : (आवेश में) सब भूठ है साहब !

कमिश्नर : सब भूठ ह्य ? दो शिकायटों का बण्डल हमने बनाया ह्य ।

मानसिंह : सब भूठ है साहब, ये लोग गाँवों में जाकर मेरे खिलाफ भड़काते हैं और उनको लगान न देने के लिए बहकाते हैं । ये सब इन काँग्रेसियों की बदमाशी है । जब लगान वसूल न हो तो राज-काज कैसे चल सकता है, आखिर हमें भी तो भूख लगती है ।

कमिश्नर : आपको भूख लगटा ह्य, किसान लोग को भूख नहीं लगटा ।

मानसिंह : लगती तो है साहब ।

कमिश्नर : लगटी ह्य टो अभी आपने अकाल में किसान का

क्या मड्ड किया, किटना रुपिया डीया, आपने ?

मानसिंह : इस वर्ष कोई बचत ही नहीं...

कमिश्नर : बचत नहीं (आवेश में) बचत नहीं, टो अकाल में अपना खरचा कम करना होता हय, भूख से मरते हुए लोगों को गोली नहीं मारा जाता ।

मानसिंह : मैंने तो शायद किसी को नहीं मारा, साहब !

कमिश्नर : (एक फोटो दिखाता हुआ) शायद, किसी को नहीं मारा, टो यह किसका फोटो हय ?

मानसिंह : (सहमा और घबराया-सा) यह भूठा है, ये काँग्रेसी भूठे हैं ।

कमिश्नर : टो ये जूट हय ? इसमें पिस्तौल लेकर आप खड़ा हय और ये मरा हुआ आडमी...सब जूट हय ! हमने बोल डिया ठा, काँग्रेसी जूटा नहीं हो सकता, आप जूटा हय ।

मानसिंह : सच कहता हूँ साहब !

कमिश्नर : आप सच नहीं कहटा हय, आपने जैट और पाठक को शराब के डोल में उतरवा डिया, यह उसका फोटो हय !

मानसिंह : इसीलिए तो कहता हूँ साब, ये काँग्रेसी मेरे बहुत पीछे पड़ रहे हैं । मेरी नींद हराम करदी है, इसने ! यह मुझे जड़ से उखाड़ना चाहता है, पर यह जागीर मेरे बाप-दादों ने अपना खून बहाकर पैदा की है, मैं क्या इनसे उखड़ सकता हूँ ?

कमिश्नर : उसने जब हमको उखाड़ दिया, टो आप कौन होता

हय ? इसीलिए हम कहटा हय आपको जमाने के साठ चलना होगा ।

मानसिंह : सो तो चल ही रहा हूँ ।

कमिश्नर : किडर चल रहा हय राजा साहब ? अभी गुमान-पुरा में किटना लोग मरवा डिया आपने ? उस पाठक को किडर छिपवा डिया ? उसका लाश किडर हय ?

मानसिंह : (काँपता हुआ) बिलकुल गलत है, साहब !

कमिश्नर : (क्रोधावेश में सब फोटो टेबुल पर पटकते हुए) और ये फोटो सब जूटा हय ? क्या बाट करटा हय, राजा साहब आप ? आप लोग इन्सानिएट नहीं जानटा । आप अपने लोग का खून करटा हय, उनका जीवन छीनकर लखमीचण्ड सेठ को पाँच हजार में मिल लगाने को बेच डिया ! आपने हमारे आफिस से इजाजत क्यों नहीं लिया ? ये रहा उसका एग्रीमेन्ट, ये जूट हय ? (दिखाता है)

मानसिंह : (घबराया-सा) साहब, यह भी आपके पास आ गया ! उसमें पाँच हजार लिखा है । हा पचास हजार ? मैंने तो पचास हजार...

कमिश्नर : पचास हजार आपको कौन डेयगा ? आपने किसानों को उसका क्या हरजाना डिया ?

मानसिंह : (घबराया और उदास-सा) अभी तो कुछ नहीं ।

कमिश्नर : कुछ नहीं ! आप सब रुपया खा गया ! और वो पाठक किडर हय ?

मानसिंह : मुझे नहीं मालूम.....

कमिश्नर : नहीं मालूम ? (टेबुल पर हाथ पटककर) आपको मालूम होना...मालूम होना...

मानसिंह : सच साहब !

कमिश्नर : बिलकुल भूठ, शराब का नशे में कुछ नहीं मालूम ! आपका सब अधिकार छिन लिया जाटा ह्य ! लाट साहब का हुकुम ह्य, उसको छोर डो ! हमारा एक आडमी उसका सलाहकार होगा, फिर आप आराम से शराब पियेगा ।

मानसिंह : ऐसा तो मत कीजिये साहब !

कमिश्नर : हम कुछ भी करने नहीं सकटा ह्य, लाट साहब का हुकुम ह्य । पन्ड्रा ओगस्ट को हमारा ऑफिस उठ जायगा (उठकर लाट साहब का हुकुम देता है) जय हिन्द ! (मानसिंह मौन होकर ले लेता ह्य और बिना उत्तर दिये हाथ मिलाकर चला जाता है । चपरासी आकर एक कार्ड देता ह्य) बुलाओ, आने डो ! (सेठ लखमीचन्द और निर्मला एक डाली लेकर आती है, उसमें फल, मेवे और मिठाई तथा दो हजार के नोट रखे हुए हैं) टेक योर सीट सेठ ! गुड मोर्निंग मिस निर्मला ! (दोनों अभिनन्दन करते हैं) टेक योर सीट प्लीज ! बैठिये सेट साहब (दोनों बैठते हैं) आपका मिजाज कैसा है ?

मानसिंह : आपकी कृपा से सब ठीक है ! (निर्मला को डाली देने के लिए संकेत करता है)

कमिश्नर : ये क्या ह्य, मिस निर्मला डेवी ?

लखमीचन्द : हुजूर मेम साहब के लिए... डाली...

कमिशनर : ओ, आपने बोट टकलीफ किया, हमारा मेम साहब के वास्ते, और आप भी बोट टकलीफ किया मिस निर्मला डेवी, बोट-बोट टकलीफ, हमारा मेम साहब के लिए ।

लखमीचन्द : हुजूर, कुछ तकलीफ नहीं । आपसो व्यवहार है, यह मेरी एक ही बेटी है, इसकी शादी पक्की हुई ।
(निर्मला दूसरी ओर मुँह फेर लेती है) उसकी खुशी में यह मेम साहब को डाली भेंट करने आई है ।

कमिशनर : ओह, टब टो बहोट अच्छा हय ! बोट अच्छा हय !
(घंटी बजाता है और चपरासी आता है) आप हमारे लिए कोई चीज नहीं लाया, डेखूँ कुछ हय, इस डाली में । (निर्मला डाली का कपड़ा उठा देती है)
यह कैसा ! इसमें डो हजार का नोट कैसा !

लखमीचन्द : हुजूर, हमारे यहाँ ऐसा है कि शादी के टाइम पर कुछ कपड़ा भी रखा जाता है, पर कपड़े पर कण्ट्रोल है, इसलिए हुजूर...

कमिशनर : ओ, ऐसा तो बोट अच्छा । (चपरासी से) जाओ मेम साहब के पास ले जाओ और निर्मला को भी ले जाओ ! (जाते हैं) आपने बोट अच्छा किया सेठ साहब, लड़की का शादी तय किया, उसकी खुशी में हम आपको यह एग्रीमेंट पीछा डेटा हय, इसका रजिस्ट्रेशन कर डिया हय ।

लखमीचन्द : आपने बड़ा कष्ट किया, धन्यवाद !

कमिश्नर : क्या आपका एग्रीमेंट पचास हजार का ठा ?

लखमीचन्द : जी नहीं, पाँच हजार का था ।

कमिश्नर : जागीरदार पचास हजार बोलटा हय, बोट भूठ बोलटा हय ! (निर्मला साड़ी के पल्ले में कुछ बाँध कर लाती है)

लखमीचन्द : अरे यह क्या ले आई ?

निर्मला : क्या करूँ मेम साहब ने बाँध दिया ?

कमिश्नर : ओ ये टुमारा हिन्दुस्तानी टरीका हय, डुलन को कुछ दिया जाता है, इसको हमारा मेम साहब खब समझता है । अच्छा, विश यू गुड लक ! (लखमीचन्द उठकर हाथ मिलाता हय, निर्मला से कमिश्नर हाथ जोड़कर नमस्कार करता है ।)

दूसरा दृश्य

[स्थान : मार्ग । एक ओर से संवाददाता और दूसरी ओर से सम्पादक आता है]

सम्पादक : भेज दिया संवाद ?

संवाददाता : हाँ, श्रीमान जी ।

सम्पादक : और वह जागीरदार कहाँ है ?

संवाददाता : उसको तो मैंने कमिश्नर की कोठी पर चढ़ते देखा था ।

सम्पादक : और तुम बिना पता लगाये चले आये ?

संवाददाता : नहीं, श्रीमान जी, ऐसा हो सकता है कभी ? मैं

वहीं खड़ा रहा, जब वह पीछे लौटा, तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। उसके हाथ में कुछ कागज था, उसको जेब में रख लिया ! उसने मुझे देखा, मैंने उसके जाते और आते के फोटो भी (केमरा की ओर संकेत करते हुए) ले रखे हैं !

सम्पादक : अब वह कहाँ है ?

संवाददाता : कुछ पता नहीं श्रीमान जी !

चम्पालाल : (बनावटी घबराहट) कुछ पता नहीं, श्रीमान जी !

क्या करें, हम राजा साहब से परेशान और राजा साहब हम से परेशान । वहीं से पैदल, जाने कहाँ चले गये ? ढूँढ़ते हम हैरान और छिपते-छिपते वे हैरान ।

सम्पादक : कहाँ से आ रहे हो ?

चम्पालाल : यही राजा साहब के पीछे-पीछे से ।

सम्पादक : क्या कर आये हो ?

चम्पालाल : कुछ पल्ले नहीं पड़ता ।

संवाददाता : पल्ले भाड़ के क्या पल्ले पड़े ?

चम्पालाल : अरे यार, तू तो राजा साहब का बच्चा बन गया, जब चाहे तू फोटो उतारले, मैं उनसे भेंट कैसे करूँ ? क्या मैं उनका बच्चा हूँ ? राजा साहब कहते थे, पन्द्रह अगस्त से मैं स्वतन्त्र हूँ, इन काँग्रेसियों ने मुझे हटाया, अगर मेरो जागीर चलो गई तो मैं कम्यूनिस्ट बन जाऊँगा। एटम बम से इनके घरों को उड़ा दूँगा ।

सम्पादक : पहला एटम बम तो तुम्हारे घर पर पड़ेगा । खैर, जाने भी दो, यह तो बताओ अब वे हैं कहाँ ?

चम्पालाल : मुझे नहीं मालूम ।

सम्पादक : झूठ !

चम्पालाल : सच, झूठ बोलना तो मैंने उसी दिन से बन्द कर दिया जब से आपसे मिला हूँ । अब तो मैंने कांग्रेस के आदर्श अपना लिये हैं । देखिये यह खट्टर, रोज आपके पत्र 'जनता' की पूजा करता हूँ, सुबह उठते ही उसका पाठ करता हूँ ।

सम्पादक : अच्छा, तो जाओ । उनका पता लगाओ और उसकी प्रतिक्रिया की खबर मुझे देते रहो । (जाता है ।
संवाददाता से) तो क्या वे वास्तव में रास्ते से ही अन्डरग्राउंड हो गये ?

संवाददाता : पता नहीं, पर मैंने वहाँ के चपरासी से पता लगाया कि कमिश्नर ने उन्हें बहुत डाँटा और सब अधिकार छीन लिये । सुनते हैं कि पाठकजी को यहाँ की व्यवस्था सँभालने के लिए मुक्त किया जा रहा है ।

सम्पादक : तब तो पाठकजी और जैत का पता लग जायगा ।

संवाददाता : जैत तो मेरी समझ में मर ही गया ।

सम्पादक : पर वारन्ट तो उसके नाम का चल ही रहा है ।

संवाददाता : वारन्ट तो पाठकजी के नाम का भी चल रहा है, पर उनको छिपाकर उनकी अनुपस्थिति में मिल खड़ी की जा रही है ।

सम्पादक : देखो, आगे क्या होता है ? तुम जाओ, मुझे भी अपने मित्र से मिलना है ।

तीसरा दृश्य

[जागीरदार का अन्तरंग कक्ष । मानसिंह कुछ चिन्तित-सा और कुछ क्रुद्ध-सा कुर्सी के आगे खड़ा है । उसका कामदार उसी के पैरों के पास नीचे फर्श पर बैठा हुआ कुछ लिख रहा है]

मानसिंह : ये आज ही सब लोगों के पास पहुँच जाने चाहिएँ, रातोंरात घुड़सवारों को खाना करदो जिससे सुबह ही सबको मिल जाय ।

कामदार : तो हुजूर, एकदम यह क्या हो गया ? कल तक तो कोई बात नहीं थी और इतना जल्दी यह स्वराज्य का डंका कहाँ से खड़ा हो गया ?

मानसिंह : स्वराज्य ! हूँ, देख लूँगा, स्वराज्य क्या होता है ? एक बार जागीरदार-मण्डल तैयार हो जाय बस ।

कामदार : जो (पत्रों की ओर संकेत कर) इन सब ने इन्कार कर दिया तो ?

मानसिंह : तो सब सड़क पर माँगते फिरेंगे, फिर मैं अध्यक्ष किस बात का हूँ ? मेरा आदेश, किसमें बल है जो न माने ? यह मेरा ही सवाल नहीं, प्रत्येक जागीरदार की रोटी का सवाल है ! राज करते हैं तो भीख माँग कर नहीं, तलवार के बल पर करते हैं । जागीर हमारी बपौती है । इसके लिए हमारे पूर्वजों ने रक्त बहाया है ।

कामदार : और अन्नदाताजी, ये अंग्रेजी राज टिका किस के बल पर है; हमारे ही बल पर तो जी रहे हैं । जो

ये जा रहे हैं तो जायँ, हमारी ओर से कल नहीं आज ही भले पधारें पर ये इन निहत्थों को राज देकर क्यों जा रहे हैं ? ये जैसे आये वैसे जायँ, फिर देखते हैं जिसमें दम होगा वह राज सँभाल लेगा । राज करना सीधा नहीं है ।

मानसिंह : ये क्या करेंगे राज, धौली टोपी वाले ! उसके लिए तलवार की ताकत चाहिए । जीवन भर तो हमारी जेलों में सड़ते रहे और अब हमारे ऊपर राज करेंगे ! हूँ, किसकी माँ ने सेर सूँठ खायी है जो हमारा राज हथिया ले !

कामदार : इस सारे भगड़े की जड़ वह पाठक है ।

मानसिंह : एक को जोता न छोड़ूँगा, पीसकर रख दूँगा (पैर पटककर) देखता हूँ वह कैसे एडमिनिस्ट्रेटर बनता है ?

कामदार : य भड़भूँजे क्या राज कर सकते हैं अन्नदाताजी ? मैं हुजूर का पुस्तैनी चाकर हूँ । खानेजाद को पोढ़ियाँ हुजूर को चाकरी में खप गई हैं । काम पड़ने पर मेरे पूर्वजों ने अपने स्वामी के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर तलवार बजाई है । उन्हीं का रक्त इन बूढ़ी नसों में दौड़ रहा है । हुजूर को दो पोढ़ियों की चाकरी में यह दाढ़ी सफेद हुई है । पर स्वामी पर विपत्ति पड़ने पर यह बुढ़ा अब भी तलवार बजाने का बल रखता है, केवल आपकी आज्ञा चाहिए ।

मानसिंह : ऐसी हो आशा है मुझे आपसे कामदार साहब । पर आज तलवार के युद्ध का कोई मूल्य नहीं, आज तो

दिमाग के युद्ध की मान्यता है ।

कामदार : तो आज्ञा कीजिये, इस बूढ़े दिमाग में आज भी वैसी ही शक्ति है !

मानसिंह : तो ऐसा उपाय सोचिये कि पन्द्रह अगस्त के पहले पाठक को नरक में पहुँचा दिया जाय ।

कामदार : (सोच में पड़ जाता है । कुछ देर दोनों मौन रहते हैं ।)
यह बात तो कुछ कठिन है...फिर भी...फिर भी,
हुजूर ऐसा करना क्षत्रिय की मर्यादा के विरुद्ध होगा ।
पाठक आपका बन्दी है, क्षत्रियों ने आज तक किसी
बन्दी शत्रु को इस प्रकार नहीं मारा ।

मानसिंह : इसलिए कि आज तक ऐसा मौका ही नहीं आया होगा ।

कामदार : क्यों नहीं । ऐसे अनेकों मौके आये हैं जहाँ क्षत्रियों ने
अपने शत्रुओं को प्राणदण्ड न देकर क्षमा कर दिया है ।

मानसिंह : उसी का तो यह नतीजा भोग रहे हैं आज ।

कामदार : और पाठक तो आपको प्रजा...

मानसिंह : ह...ह ह...हहहा...आ... (अट्टहास करता है) प्रजा!
विश्वासघातक ! प्रपची ! मेरी प्रजा ! बस, हो गई
आपकी भी स्वामी-भक्ति की परीक्षा ! (आवेशपूर्ण
क्रोध और व्यंग-भाव प्रदर्शित करता है)

कामदार : (कुछ रोष में) मैं ठीक कह रहा हूँ, मेरे स्वामी !
गुमराह स्वामी को अपना कर्तव्य सुझाना भी स्वामी-
भक्ति ही है । अधर्म से शत्रु का नाश करने की सम्मति
मैं आपको कदापि न दे सकूँगा । मुझे तलवार दीजिये,

मैं अपने शत्रु को रण-भूमि में ललकाऊँगा, पर विश्वास-घात से शत्रु को मारना मेरा कर्त्तव्य नहीं है ।

मानसिंह : तो आप जाइये, मुझे आपकी नौकरी की आवश्यकता नहीं है !

कामदार : (सक्रोध उठता हुआ) मैं जाता हूँ ठाकुर साहब !
(पत्रों को पटककर) ये रहे आपके पत्र और यह रही आपकी कलम ! (कलम फेंकता हुआ) परन्तु जाते-जाते कहे जाता हूँ कि आप एक क्षत्रिय की मर्यादा के विरुद्ध काम कर अपने को पतन के खड्डे में डाल रहे हैं !
(सावेश प्रस्थान)

मानसिंह : (गरजकर) जाओ ! (कुछ देर तक गर्दन नीची कर खड़ा रहता है फिर क्रोध में आरक्त आँखें निकालकर होंठ पीसता हुआ, ऊपर सिर उठाता हुआ, खूँटी पर रखी तलवार को म्यान से खींचता हुआ) क्षत्रिय की मर्यादा तलवार में ही बँधी है, मस्तिष्क में नहीं ! मस्तिष्क क्षत्रिय को पतन की ओर ले जायगा, और तलवार उत्थान की ओर । क्या देश में कोई क्षत्रिय नहीं रहा ? क्या राजपूत की तलवार (खड्ग भून-भूनाता हुआ) का पानी उतर गया, म्यान में पड़े-पड़े इसे काठ लग गया, या इसका लोहा पिघलकर म्यान ही में ढुल गया ? नहीं, (गर्दन हिलाता हुआ) मानसिंह की तलवार का लोहा अब भी तप्त है... उसमें वह पानी है, वह जौहर है, वह जौहर है (तलवार उठाकर घुमाता हुआ) वह...जौ...हर...है...एएए

वह...जौ...हर...एएए...वह (लड़खड़ाता हुआ कुर्सी में गिर पड़ता है, फिर सँभलकर बैठता है और मदिरा पीता है। फिर बोतल और प्याला लेकर चुपचाप कुर्सी पर बैठकर सोचने लगता है।)

नौकर : (प्रवेश कर) चम्पालाल हाजिर है हुजूर !

मानसिंह : हूँ, बुला उसे !

चम्पालाल : (प्रवेश कर) अन्नदाता की जय हो !

मानसिंह : हूँ ! अन्नदाता कौन ?

चम्पालाल : अन्नदाता जो हैं वही रहेंगे, राज के सिवाय दूसरा कौन हो सकता है ?

मानसिंह : वो तेरा पाठक नहीं ?

चम्पालाल : हुजूर, वो मुझे मिल जाय तो बकरे की तरह हलाल करदूँ ।

मानसिंह : शाबास, मेरे शेर ! तू मेरा भाई है आज से, (दौड़कर उसे गले लगाना चाहता है, पर उसे खद्दर पहने हुए देखकर) पर यह क्या, नमकहराम ? तूने भी खद्दर पहन लिया है, समय के साथ तूने भी रंग बदल लिया ! ओह, चारों ओर शत्रु ! (गर्दन पकड़ने को भ्रमण करता है)

चम्पालाल : (पीछे हटता हुआ) नहीं अन्नदाता, मैं शत्रु नहीं हूँ, यह खद्दर तो उन लोगों का भेद लेने को पहना है।

मानसिंह : (पीछे हटकर) अच्छा ! (साँस छोड़ता हुआ) अच्छा ! तो तू निश्चित रूप से मेरा भाई है, बोल स्वीकार है।

चम्पालाल : हुजूर की आज्ञा बजा लाऊँ ।

मानसिंह : तो ठीक है, बैठ । (मानसिंह कुर्सी पर बैठता है)

और चम्पालाल नीचे फर्श पर बैठता है, पर मानसिंह उसका हाथ पकड़कर कुर्सी पर बैठाता है) नीचे नहीं, आज तू यहाँ बैठ मेरे भाई !

चम्पालाल : आपका माँ-वीतपणा है, अन्नदाता !

मानसिंह : तो ले (मदिरा प्याले में ढालकर देता है) पी ।

चम्पालाल : जो आज्ञा । (लज्जित-सा दोनों हाथों में लेकर पीने लगता है)

मानसिंह : देख चम्पालाल, आज मेरा सत्यानाश हो रहा है, उसको रोकने वाला आज मेरा कोई साथी नहीं है, तू कर सकेगा कुछ ?

चम्पालाल : हाँ, हाँ... कर सकूँगा मैं क्यों नी... कर सकूँगा । जो आपका सत्यानाश करे, मैं उसका... साढ़े... सत्यानाश... कर सकूँगा, बस... आज्ञा... हो... जाय, जैसे माताजी के लिए पाड़ा । बस, आज्ञा हो जाय ।

मानसिंह : उसके लिए तलवार की जरूरत नहीं ।

चम्पालाल : तो... जहर... देकर सुला दूँगा ।

मानसिंह : शाबास ! तू मेरी बात को खूब समझता है ! (गले से सोने की कंठी उतारकर देता हुआ) ले, उसका यह इनाम !

चम्पालाल : (कंठी लेता हुआ) आखिर हुजूर का भाई हूँ न, फिर क्यों न समझूँ...

मानसिंह : तू जानता है, मेरा सत्यानाश किसने किया ? उस पाठक ने सेरे सब अधिकार छिनवा दिये ।

चम्पालाल : जानता... ऊँ... अन्नदाता... जानता आ... हूँ, वह

मिल जाय तो...चाकू से ही...उसकी गर्दन...जिबेह...
कर दूँ ।

मानसिंह : देख (उँगली से कान पास लाने का संकेत करता
हुआ कान में) उसे आज ही रात को खतम करना है ।

चम्पालाल : ठीक... (आँखें निकालकर सोचता हुआ) पर
वह है कहाँ ?

मानसिंह : देख, आज ही रात को चन्द्रगढ़ चले जाना । कल
उसके छूटने की आज्ञा मुझे देनी पड़ेगी, उसके पहले
ही (विष की शीशी देकर) इससे उसको गहरी नींद
में सुला देना होगा ।

चम्पालाल : अच्छा आ... (लम्बी साँस लेकर गर्दन हिलाता
हुआ) पर मेरा इनाम ?

मानसिंह : जो तू माँगेगा, और देख, उसकी लाश को कहीं ऐसी
जगह छोड़ देना कि उसे भेड़िये और सियार खा जायँ ।

चम्पालाल : काम तो बहुत जोखम का है अन्नदाता !

मानसिंह : एक काम और है, ये तीनों पत्र जिनका पता लिखा
है उनके पास ले जाकर १५ अगस्त के पहले इसका
उत्तर ले आना है । इसके लिए ले यह (एक और
आभूषण उतारकर देता है) इनाम, और ले यह दारू
की बोतल ! काम करने से पहले हिम्मत के लिए इसे
पी लेना ! उसके रसोइये के लिए यह इनाम । (एक
और आभूषण देता है)

चम्पालाल : जब तक इस शरीर में प्राण हैं, आपका...कोई
...कुछ नहीं बिगाड़ सकता ।

मानसिंह : अच्छा किसी से कहना नहीं कि मैं महलों में हूँ। सब से कहना कि उस दिन से कमिश्नर के यहाँ से लौटे नहीं। (चम्पालाल का प्रस्थान) मानसिंह को नष्ट करना सरल नहीं है।

चौथा दृश्य

[गुमानपुरा गाँव का एक मार्ग। गाँव के कुछ लोग आ-जा रहे हैं]

पहला व्यक्ति : कहो पटेल ?

दूसरा व्यक्ति : जैरामजी की !

तीसरा व्यक्ति : अरे, नवी जूनी ?

चौथा व्यक्ति : एक बात सुणी है, कहाँ तक सच्ची है, ये तो भगवान जाणे।

पहला व्यक्ति : हाँ, हाँ, कहो।

चौथा व्यक्ति : सुणी है के राजा साहब के सब अधिकार ले लिये।

दूसरा व्यक्ति : हाँ, हाँ, या बात तो मैं भी सुणी।

तीसरा व्यक्ति : अरे भाई, धन्यवाद दो उस पाठक को।

पहला व्यक्ति : और जैत को नहीं ?

चौथा व्यक्ति : जैत तो हमारा प्राण था ! मर गया, पर कुछ कर गया, और, सुणी है के पाठक जी को कमिश्नर साहब राज का काम सँभालने को कह रहे हैं।

दूसरा व्यक्ति : पर उस बेचारे जैत का तो पता ही नहीं, मरा या जीता ?

पहला व्यक्ति : फिर कौन उसकी जगह काम करेगा ? जैत भी नहीं, पाठक भी नहीं, फिर हमारी बात कौन रखेगा ?

तीसरा व्यक्ति : मेरी राय में तो भाई तुम इस काम को सँभाल लो तो अच्छा ।

पहला व्यक्ति : अरे ! कहाँ राजा भोज और कहाँ गाँगल्या तेली ? मैं कहाँ इतना पढ़ा-लिखा हूँ ? आज-कल के राज-काज के मामले अपने बस के नहीं हैं भाई !

सम्पादक : (प्रवेश कर) जयहिन्द, पटेलों !

सब : आओ साहब, आओ । जय हिन्द ! क्या समाचार है ?

सम्पादक : पन्द्रह अगस्त को स्वराज्य की घोषणा होनेवाली है । जागीरदार-प्रथा समाप्त हो जायगी; राजा के अधिकार छीन लिये गये हैं; पाठक जी यहाँ के शासक होंगे ।

पहला व्यक्ति : वाह, वाह, यह तो अच्छे समाचार हैं, पर पाठक जी हैं कहाँ ?

सम्पादक : ओह, मैं तो आपसे कहना ही चाहता था कि मान लो, यदि पाठक जी इस संसार में न रहे तो आप किसको अपना नेता चुनेंगे ? देखिये कोई ऐसा व्यक्ति जो आजकल के राज-काज को ठीक ढंग से समझता हो । स्वराज्य का तो ऐसा मार्ग है कि जिसमें अनेकों जैत और सैकड़ों पाठक खप जायेंगे । उनको मार्ग में ही छोड़कर आँखों के आँसुओं को पीते हुए आगे बढ़ जाना होगा । अनेकों जैत और पाठक हमारा मार्ग-प्रदर्शन करेंगे । हमें अपने मार्ग पर अग्रसर होना है । मैं अपनी तुच्छ सेवाएँ आपको अर्पित करता हूँ ।

सब : ठीक है, ठीक है, आप भी ठीक ही हैं। (वेग से एक ओर सब का प्रस्थान और दूसरी ओर सम्पादक का प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

[समय—सन्ध्या। पहाड़ी स्थान का एक मार्ग। एक ओर सूर्य अस्त हो रहा है और उसके दूसरी ओर सामने भयानक जंगल है। पहाड़ की एक चट्टान से संवाददाता उतरता हुआ आ रहा है। चम्पालाल एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ दारू की बोतल मुँह से लगाए हुए है। उसने एक टाँग लम्बी फैला रखी है और दूसरी सिकोड़ रखी है। संवाददाता इसी को देखकर इसकी ओर बढ़ता हुआ आ रहा है]

संवाददाता : कहो गुप्तचरजी, आज वनचरजी क्यों हो रहे हो ?

चम्पालाल : अब मुझे...गुप्तचर मत कहो, आज से मैं (उँगली से संकेत कर) ... तुम्हारा...चाचा...हूँ...चाचा क्यों...
हूँ के...न्हीं तू ...राजा साब...का...बच्चा है ना...
हुँउ...?

संवाददाता : (मद्यप-सी चेष्टा करता हुआ) हाँ...हाँ !

चम्पालाल : तो...आज से मैं राजा...साब...का...भाई हूँ
भाई, इसलिए मैं तेरा चाचा...

संवाददाता : (उसी प्रकार) नहीं...ये...नहीं (उँगली हिलाते हुए और घूमते हुए) होने...सकता।

चम्पालाल : नहीं होने सकता...क्यों नहीं होने सकता ? उन्होंने
...जो...कहा...था (जेब में से एक दूसरी बोतल निकालकर) ये देख दाखों का दारू...बोतल में म्मारूँ।

संवाददाता : अब...समझा...तुम...मेरे...चाचा...हो चाचा...

तो लाओ...पिला दो ना थोड़ी...

चम्पालाल: नहीं यार...इसमें...से तो...नहीं...पिला...सकता...
ये...तो...दूसरे काम की है...दूसरे (इसको जेब में रख
कर आधी खाली बोतल आगे करता हुआ) ले, इसमें
...से पी...मेरे...भतीजे, इसमें से...

संवाददाता : नहीं चाचा...ये तो...तुम...पी जाओ, मैं तो...
दाखों का दारू पीऊँगा, दाखों का ।

चम्पालाल : (सारी बोतल खाली कर देता है)

संवाददाता : (उसकी जेब पर हाथ फिराता हुआ, लला ममेरे
चाचा...अब तो...पिला, (जेब से बोतल खींच लेता है
और खोलकर थोड़ा सा चखकर) वाह ! बोत...
अच्छा ! (और पीने का प्रदर्शन करता है)

चम्पालाल : बस...भतीजे...बस...अब...तुम्हें पीने दे । (उससे
बोतल लेकर पीने लगता है) बस ! बस ! (आधी पीकर
बोतल बन्द कर जेब में रखते हुए) अब ये...उस काम
के लिये...दाखों का दारू...बोतल में म्मारू ।

संवाददाता : अरे चाचा...ये म्मारू कौन ए !

चम्पालाल : (हँसता हुआ) हँ हँ हँ हँ हँ...तुम्हें नहीं...मालूम...

संवाददाता : अरे समझा...वो मारवाड़ा की लड़की...
म्मारू...

चम्पालाल : नहीं...ममेरे भतीजे... नहीं ! तुम्हें क्या मालूम ! (जेब
से विष की शीशी निकालकर) ये देख, बोतल में
म्मारू (उठकर लड़खड़ाता हुआ जाता है पर गिर
पड़ता है) अब...स्साले को...म्मारकर...आऊँगा...

(गिरकर फिर बैठ जाता है)

संवाददाता : अरे...चाचा...तुम्हीं...कहाँ...चले...यार (उठकर जान-बूझ कर लड़खड़ाता हुआ) किसको...मारना है...लाओ...मुझे दो। मैं अभी मार आता हूँ... (खड़ा रहकर घूमता हुआ) ऐसा मारूँ कि फिर उठने का नाम...नहीं...ले...नाम, ल्ला...ये शीशी...मुझे दे... (पास जाकर हाथ में से शीशी छीनकर देखता हुआ) ओह...ये म्मारू...बड़ी अच्छी चीज़ है...किसको म्मारना...ए अभी म्मार आऊँ...

चम्पालाल : तू...राजा साब...का बच्चा है...बच्चा !

संवाददाता : बच्चा...बड़ा अच्छा...ए...कच्चा नहीं...ए ।

चम्पालाल : तो तू ही मार दे उसे, तू राजा साब...का...बच्चा...मैं...उनका भाई...अरे...उस...पाठक...ने...

संवाददाता : है, कौन पाठक ! वो तो...मरग्या...ना ?

चम्पालाल : अरे...जीता...है...जीता, चन्दरगढ़ में...। जा...तू ही मार आ...उसे...जितने...मैं...यहाँ...बैठा हूँ ।

संवाददाता : अच्छा ।

चम्पालाल : देख, उसकी लाश को...जंगल के...भेड़िये को खिला देना ।

संवाददाता : और...

चम्पालाल : और क्या...एक बात और...थोड़ी ये चिट्ठियाँ भी तो...पहुँचा देना...यार...!

संवाददाता : पर चाचा...एक वाइन...का...कप तो...और पिलादो...

चम्पालाल : हाँ हाँ...ले...ले । (बोतल देता है)

संवाददाता : (बोतल लेकर पीने का प्रदर्शन करता हुआ)

अरे, वो भेड़िया...यहीं आ रहा ए...चाचा ..

चम्पालाल : अरे ! (उधर देखता है । इतने में संवाददाता शीशी

से विष लेकर उसमें मिला देता है) किधर ए...थोड़ा

उसे भी पिला देना...

संवाददाता : अरे वो तो वो जा रहा...भाग गया...

चम्पालाल : ला, अब बोतल...ला

संवाददाता : उँहँ...नहीं दूँगा...अब तो...मैं...साथ ले...

जाऊँगा ।

चम्पालाल : नहीं, नहीं, मेरा दाखों का...दारू (दोनों छीना-

भपटी करते हैं । संवाददाता धीरे से बोतल छोड़ देता

है । चम्पालाल उसको पीते ही मर जाता है, संवाद-

दाता उसकी जेब से पत्र और आभूषण लेकर चल

देता है ।)

छठा दृश्य

[नगर का एक मार्ग, लोग आ-जा रहे हैं । कुछ इधर-उधर की बातें हो रही हैं । दूर इन्कलाब जिन्दाबाद की ध्वनि सुनाई पड़ती है, जो धीरे-धीरे पास आती जा रही है । लोग उसे सुनकर मार्ग के दोनों ओर एकत्रित हो जाते हैं, जुलूस सामने से निकल रहा है । आगे-आगे ध्वज लिये कुछ लोग गाते हुए आ रहे हैं, बीच में सम्पादक नेता बनकर चल रहा है । उसके गले में एक सूत की माला पड़ी है ।]

गीत

भारत देश हमारा !

जनगण मन अधिनायक जय हे, भारत भाग्य विधाता !
 अमर त्याग की अमर भावना, अमर क्रान्ति के जाता !
 स्वस्थ उरों में बलिदानों की युग से बहती धारा ।
 भव्य भाल का प्रखर तेज ले जागे भाग्य हमारा !

भारत देश हमारा !

ढह गये स्वार्थ के सिंहासन, शोषण के प्याले फूटे ।
 आतंक भरे बर्बरता के, हत्कण्डे काले टूटे ।
 मुक्त हुई मानव की साँसें, ढँस गई युगों की कारा ।
 गूँज उठे उद्घोष गगन में, अब अधिकार हमारा !

भारत देश हमारा !

मुक्त हुए हम धरती के लालों को मुक्त कराने ।
 त्रस्त, ध्वस्त, लुण्ठित मानव को मृत्यु से पुनः जगाने ।
 शोषित भूखी मानवता का मानव ही एक सहारा ।
 जन-उत्पीड़क अन्यायी को हमने नित ही ललकारा !

भारत देश हमारा !

[ध्वजवाला समूह एक स्थान पर खड़ा हो जाता है ।
 सम्पादक बीच में खड़ा रहता है । एक व्यक्ति भाषण देता है ।]

व्यक्ति : बहनो और भाइयो ! हमारे असोम त्यागों के कारण
 हमारा पथ सदा प्रशस्त होता आया है । भाग्यीय
 स्वाधीनता के इतिहास में अनेकों व्यक्तियों के नाम
 इसलिए स्वर्णाक्षरों में लिखे गये हैं कि उन्होंने अपने
 त्याग और बलिदान के कारण हमारा मार्ग प्रशस्त

किया है। त्याग की गौरव-गाथा भारतीय चरित्र को उज्ज्वल बना रही है। हमारे पाठकजी का त्याग और बलिदान इस दृष्टि से किसी प्रकार कम नहीं है। अच्छा होता वे आज हमारे बीच में होते, पर उनके जीवन के विषय में हमारा सन्देह एक प्रकार से सत्य होता जा रहा है ! उसकी अनुपस्थिति में हमें अपना नेता चुनकर रखना होगा। इस विषय में मैं एक बात बता देना चाहता हूँ, वह यह कि अपना नेता चुनने का अधिकार केवल हमें है। दूसरी कोई शक्ति हमारे ऊपर किसी को थोप नहीं सकती ! क्या आप इस बात को मानते हैं कि हम अपना नेता स्वयं चुनें ?

सब : हाँ।

व्यक्ति : ... तो मैं आपके सम्मुख हमारी 'जनता' के सम्पादक का परिचय देना चाहता हूँ। पर इनका परिचय मैं क्या दूँ, इनका परिचय तो यह 'जनता' है। (पत्र दिखाते हुए) इनसे कौन परिचित नहीं है ? कितनी ही बार जेल में जाकर जेल की यातनाएँ भुगतने में इनका शरीर तपे हुए सोने के समान उज्ज्वल निखर गया है। पन्द्रह अग्रस्त समीप ही है, जब भारतीय स्वाधीनता की घोषणा होगी और उस दिन हमारे 'जनता' के सम्पादक आप लोगों की अनुमति से यहाँ का शासन-भार सँभालेंगे। बोलो 'जनता की जय !' (सब बोलते हैं)

सम्पादक : मैं तो आप लोगों का सेवक हूँ। आपके आदेश को

कैसे टाल सकता हूँ ? अच्छा होता पाठकजी आज भी कहीं से जीवित निकल आते । (भरे हुए गले से) परन्तु अब उनकी कोई आशा नहीं ! आपकी आज्ञा मुझे मान्य होगी । (सब जयकार करते हुए बिखरते हैं ।)

सातवाँ दृश्य

[मार्ग का दूसरा भाग । संवाददाता आता है]

संवाददाता : साम, दाम, दंड, भेद... (पागल की भाँति हँसता हुआ) हा...हा...हा...हा...हा... हो...हो... हो...हो...हो, राजनीति में सब चलता है, (दूर से एक व्यक्ति को आते देखकर) पर...पर...चाचा...मैं नहीं... मुझे छोड़ दो...चाचा !

व्यक्ति : कहो जी संवाददाता महोदय !

संवाददाता : (घूरकर देखते हुए) अरे तुम हो ! मेरे प्राचीन काल के चिर-साथी ! मेरो ऐतिहासिक स्मृतियों के ध्वसावशेष ! पर मैं नहीं था, मरने दो, मरने दो, पाठक मरता हो...मुझे इससे क्या ?

व्यक्ति : अरे क्या पागल हो गये हो ?

संवाददाता : मैं पागल हो गया हूँ, चलो अच्छा हुआ (चारों ओर दौड़ता हुआ) मैं पागल हो गया हूँ । हा...हा... हा...हा ! हो...हो...हो...हो ! मैं पागल हो गया हूँ ।

व्यक्ति : अरे यार, तेरा सम्पादक शासक बन रहा है । उसी का राज-मद तुझे भी चढ़ा है, क्यों ? बंचारे पाठक को जबरदस्ती मार रहे हो ।

संवाददाता : पाठक जिन्दा है । हा...हा...हा...हा ! (भयभीत-
सा पीछे हटता हुआ) मेरे चाचा...मैं नहीं...मैं नहीं,
वह भेड़िया...हो...हो...हो...हो... (भागने लगता है),
व्यक्ति : अरे ! अरे ! कौन चाचा ?

संवाददाता : वह देखो, भेड़िया ! हा...हा... हा...हा !

व्यक्ति : वह तेरा चाचा है, या भेड़िया, या सम्पादक है ?
(उधर देखता हुआ) वाह दो दिन में चाल बदल गई
है, पन्द्रह अगस्त के बाद तो आँख तड़क जायगी, और
तुझ पर भी तेरे चाचा का भूत ऐसा सवार होगा कि
...(धकेलता हुआ) जा, वह आ गया । (चला जाता है)

संवाददाता : आ गया ! (आँखें निकालकर डर से काँपता हुआ-
सा) चाचा का भूत...हा...हा...हा...हा चाचा, मैं
नहीं...वह भेड़िया...!

सम्पादक : (प्रवेश कर) यह क्या पागल-प्रलाप है ?

संवाददाता : पागल ! हा...हा...हा...हा...मैं पागल...!

सम्पादक : अरे यह क्या हो गया है, तुम्हें ?

संवाददाता : मुझे, मुझे (हाथ घुमाता हुआ) कुछ नहीं हो
गया है, राजमद, राजमद दिमाग में चढ़-उतर रहा
है । (डरकर पीछे हटता हुआ) चाचा... मैं नहीं वह
भेड़िया...हा...हा...हा...हा !

सम्पादक : अरे क्या बात है ? (चिन्तित-सा) क्यों भाई, (उसे
बगल में दबाता हुआ) क्या हुआ ?

संवाददाता : हो गया, सब हो गया, साम, दाम, दंड, भेद सब
हो गया ।

सम्पादक : चलो अच्छा हुआ ।

संवाददाता : अच्छा हुआ...हा...हा...हा...हा...अच्छा हुआ,
मैंने अच्छा किया ?

सम्पादक : हाँ हाँ, अच्छा किया ।

संवाददाता : आप राजा बनोगे तो मुझे अपना बच्चा बना लो ?

सम्पादक : हाँ हाँ, तुम तो अभी भी मेरे बच्चे ही हो !

संवाददाता : और चाचा...मैं नहीं (डरकर पीछे हटता हुआ)
मैं नहीं...हा...हा...हा...हा !

सम्पादक : डरो मत, डरो मत, यहाँ कोई नहीं है ।

संवाददाता : मैंने अच्छा किया ?

सम्पादक : हाँ, हाँ, तुम तो अच्छा ही करते हो, क्या समाचार
है, बोलो ।

संवाददाता : मुझे फाँसी तो नहीं होगी ?

सम्पादक : नहीं, मैं तुम्हें अपना सेक्रेटरी बना लूँगा ।

संवाददाता : तो सुना दूँ ?

सम्पादक : हाँ, हाँ, जरूर सुनाओ ।

संवाददाता : वह पाठक जीवित है...हा...हा हा...हा...पर
चाचा...मैं नहीं...वह भेड़िया... (डरकर भागता है)
हा...हा...हा...हा...

सम्पादक : (पहले चकित, फिर उदास और चिन्तित और फिर
क्रुद्ध होकर) और इसीलिए तुम जीवित रहे ! मर न
गये, यह संवाद सुनाने से पहले । मेरी सब (शान्त
और उदास होकर) आशाओं पर पानी फिरा दिया !
(धीरे-धीरे प्रस्थान)

आठवाँ दृश्य

[शान्ता वेश्या के घर का एक कमरा । शान्ता कुछ चिन्तित-सी घूम रही है । सन्ध्या-समय, एक कोने में दीपक का सामान्य प्रकाश । एक गदरा बिछा है, उस पर सफेद चद्दर और दो मोढ़े रखे हुए हैं । शान्ता घूमती जाती है और विचारती है]

शान्ता : एक युग बीत गया, दूसरा बीत रहा है, इसके पश्चात् सन्ध्या और... (विचारती हुई) नाश ! नाश के सघन अन्धकार में भीषण अट्टहास के साथ ज्वालाएँ अपनी लपलपाती जीभ से जीवन को चाट जायँगी, कितना मनोहर और सुन्दर, आशाओं की ओर अग्रसर होने वाला यह जीवन, निराशाओं के आघात से जर्जर हो जायगा ? यह कौन जानता था और जानने पर भी उसको रोकने का किस में साहस है ? हृदय की मीठी वेदनाओं को जगत को वासनाओं का विष किस प्रकार मारकर चला गया ? किसी को संकेत न मिला । स्वतन्त्रता का राग अलापने वाले पुरुष ने नारी की स्वतन्त्रता को किस प्रकार वासना का विष पिलाकर उसे सदा के लिए कुचल दिया, ए वासना के अभिमानी पुरुष ! क्या यही तेरी स्वतन्त्रता है, जिसकी दुन्दुभी तू सारे संसार में फूँकता फिरता है ? क्या ये ही तेरे मौलिक अधिकार हैं जिनके अभिमान में तेरी आंखें धरती की ओर नहीं झुकती ?

संवाददाता : (प्रवेश कर) राजमद सिर में चढ़ गया हा...हा
हा...हा...कोई निकाल दो हा...हा हा...हा...!

शान्ता : अब तुझे राजमद सताने लगा ! कल का छोकरा... !

संवाददाता : मैं कल का छोकरा, तू आज की बुढ़िया, मैं
राजा साहब का बच्चा । सम्पादक...चाचा...मैं
नहीं... ।

शान्ता : अरे चाचा के भतीजे ! क्यों दारू पीकर अपना जीवन
बिगाड़ रहा है ? तुझे यह पता नहीं कि मैं तेरी माँ हूँ ।

संवाददाता : मेरी माँ ! हा...हा हा...हा...मेरी माँ ! हा...हा
हा...हा...

शान्ता : ओह ! (सिर सँभालती हुई) अधूरे जीवन की पूरी
कहानी, सोते सपनों के जागते दीपक, तुझे क्या हो
गया ?

संवाददाता : (कुछ होश में आकर) सब पूछते हैं क्या हो
गया...क्या हो गया । कुछ पता नहीं । लोग कहते हैं
पागल हो गया हूँ...मैं पागल हूँ...(नाचता है) मैं
पागल हूँ...हो-हो-हो-हो-हो मैं पागल, मैं पागल... !

शान्ता : कौन कहता है तू पागल हो गया है ? तू तो बिलकुल
ठीक है ।

संवाददाता : हा हा हा...बिलकुल ठीक हूँ...बिलकुल ठीक हूँ
मेरी माँ...

शान्ता : हाँ, मैं तेरी माँ । कैसे आया यहाँ, आज पहली बार ?
क्या वासना तुझे भी खींच लाई ?

संवाददाता : नहीं, नहीं, वह सम्पादक, संवाद...

शान्ता : हाँ, वह सम्पादक तेरा...

संवाददाता : (जेब से चिट्ठियाँ और शीशी देता हुआ) मेरा चाचा...नहीं मैं नहीं...वह भेड़िया...हो...हो...हो...हो... (डरता हुआ भाग जाता है)

शान्ता : (पत्रों को देखती हुई) ये किसके पत्र हैं ? ओ हो ! ये जागीरदारों के पत्र इसके पास कैसे आ गये ? और, यह शीशी (आँखें निकालती हुई) विष ! हलाहल विष ! यह मुझे क्यों दे गया...तो किसी ने...क्या सम्पादक ने मेरे इस सम्बन्ध का परिचय उसे दे दिया ? इसीलिए वह पागल-सा दिखाई देता था । और, यह विष ! (घूमती और कुछ सोचती हुई) यह मेरे लिए...? एक दिन पहले भी मैंने इसकी शरण लेनी चाही थी, पर उस लोभी कुत्ते सम्पादक ने मुझे संसार का हरा-भरा बाग दिखाया और मुझे इस भ्रष्ट मार्ग की ओर प्रेरित किया । आज फिर मुझे इसकी शरण में जाने का संकेत दे गया है । मेरा पुत्र (सोचती हुई) ठीक है; जीवन की अन्तिम सन्ध्या कितनी फीकी और शुष्क है अन्तिम रात्रि आ रही है निर्लज्जता का अन्धकार लिये हुए, अन्तिम पल निर्मोह से पीठ फिराये हुए...

सम्पादक : (प्रवेश कर) नमस्ते ।

शान्ता : (चौंककर) कौन ? (घूरती हुई) तुम ? (पत्र और शीशी छिपाती हुई)

सम्पादक : हाँ, मैं ।

शान्ता : तुम यहाँ कैसे ?

सम्पादक : क्यों, मुझे अब कौन रोक सकता है, यहाँ आने से ?

शान्ता : अच्छा होता, तुम न आते इस घड़ी में । पर चलो, यह भी अच्छा हुआ कि तुम आ गये ग्रहण में थोरी की तरह घूमते हुए ।

सम्पादक : मैंने सोचा, बहुत दिन हुए, इधर निकला, तो मिलता जाऊँ ।

शान्ता : आपने बड़ी कृपा की मुझ पर । (व्यंग से)

सम्पादक : आज-कल क्या बात है, यह सादगी कहाँ से अपना ली तुमने ?

शान्ता : यह तो राजा-महाराजाओं का वैधव्य भुगत रही हूँ । अब तो आप लोगों का जमाना है ।

सम्पादक : मुझे ज्ञात न था कि तुम मुझे इस प्रकार व्यंग द्वारा आघात करोगी, मेरी निराशाओं पर पानी फिर चुका है । सोचा था, तुम्हारे पास कुछ सान्त्वना मिलेगी । पर तुमने मेरे कुचले हुए हृदय पर आघात कर दिया । जाता हूँ ।

शान्ता : आपका हृदय मुझसे भी कोमल है इसका मुझे ध्यान न रहा । क्षमा कीजिये, आजकल मैंने सब धन्धा छोड़ दिया है । आपके आन्दोलनों के कारण मेरा बाजार मन्दा हो गया । कभी कोई आ जाता है तो सुना देती हूँ ।

सम्पादक : सोचा था, यहाँ आकर तुम्हारे मधुर संगीत से हृदय को कुछ शान्ति मिलेगी । परन्तु, यहाँ तो रंग ही सफेद हो गया है ।

शान्ता : आप लोगों की कृपा से उन बन्धनों से मुक्त हूँ, एक विचित्र और नवीन प्रकार की स्वाधीनता का अनुभव होने लगा है। कहती हूँ वेश्या का जीवन...

सम्पादक : कितना अच्छा है !

शान्ता : हाँ, कितना अच्छा है ! यौवन का मद सब उतर जाता है स्वार्थियों के मन-बहलाव में।

सम्पादक : फिर नाराज हो गई ! पहले तो नहीं होती थीं, पर अब...

शान्ता : (क्रोध भरे व्यंग में) पहले तो वेश्या थी, अब नहीं।

सम्पादक : आप सती हैं। मेरी समझ में जो जहाँ है, उसे वहीं रहना चाहिए। प्रत्येक फूल अपने बगीचे में हो खिलता हुआ अच्छा लगता है।

शान्ता : वृक्ष को काट दो, छाँट दो, उसके फूलों को तोड़ दो, कुचल दो, मसल दो, उसकी सुगन्ध को बोतल में भर कर बाजारों में बेचते फिरो। स्त्री पुरुष के मनोरंजन की वस्तु है। पुरुष उस पर व्यंग करे, स्त्री उसे सहन करे।

सम्पादक : शान्ता, मैं नहीं जानता था कि मेरे हृदय को वस्तु गुण्डे चुराकर ले जायेंगे और उसकी यह दुर्दशा होगी।

शान्ता : योगेश, अतीत की स्मृतियाँ आज काँटे बनकर हृदय को साल रही हैं। तुम जब-जब आते हो एक नई वेदना उत्पन्न कर जाते हो। वेदना की यह चरम सीमा ! तुम जाओ यहाँ से, मेरे सामने से हट जाओ !

सम्पादक : अच्छा ! (उदास होकर गर्दन लटकाए धीरे-धीरे चलने लगता है)

शान्ता : अरे नाराज हो गये, तुम ?

सम्पादक : नाराज हो तुम, मैं नहीं ।

शान्ता : हाँ, मैं तुम से नाराज हूँ ।

सम्पादक : मैं जाना चाहता हूँ । क्या कहना चाहती हो ? जल्दी कह डालो ।

शान्ता : केवल एक बात जानना चाहती हूँ । बस, और कुछ नहीं ।

सम्पादक : क्या ?

शान्ता : तुमने... (भाव बदलती हुई) खैर, जाने दो कुछ नहीं ।

सम्पादक : क्यों, क्या हुआ ? पूछो ना जो कुछ पूछना हो ।

शान्ता : क्या तुम मेरी इस हालत पर दया नहीं कर सकते ?

(सम्पादक चुपचाप गर्दन झुकाये खड़ा रहता है)

बोलो ! (सम्पादक को हिलाकर) बोलो !

सम्पादक : नहीं ।

शान्ता : क्यों ? पहले तो तुम इतने कठोर न थे !

सम्पादक : आज जीवन की सारी मधुरता जाती रही ।

शान्ता : क्यों, आज मैं वेश्या नहीं हूँ इसलिए ?

सम्पादक : हाँ ।

शान्ता : तो फिर मैं फिर से वेश्या बन जाऊँ ?

सम्पादक : हाँ ।

शान्ता : यह मैं कदापि न कर सकूँगी ।

सम्पादक : तुम्हारी इच्छा । (जाने लगता है)

शान्ता : ठहरो, एक बात और सुनो ।

सम्पादक : (रुककर) क्या ?

शान्ता : अब तुम फिर न आओगे ?

सम्पादक : शायद न आऊँ ।

शान्ता : तो फिर बैठो, मैं तुम्हारे लिए अन्तिम बार वेश्या बनती हूँ । तुम्हें मेरे हाथों से पीना अच्छा लगता था, आज अन्तिम बार पीते जाओ ।

सम्पादक : नहीं, अब नहीं ।

शान्ता : (पकड़कर हिलाती हुई) क्या हो गया है, मेरे योगेश तुम्हें ?

सम्पादक : कुछ नहीं ।

शान्ता : बोलो ! (हिलाती हुई) बोलो !

सम्पादक : कुछ नहीं ।

शान्ता : नहीं, तुम्हें कहना ही पड़ेगा, नहीं तो तुम्हें नहीं जाने दूँगी ।

सम्पादक : जैसी तुम्हारी इच्छा ।

शान्ता : (नीचे बैठकर) अब कहो । कुछ न कुछ बात अवश्य है ।

सम्पादक : क्या कहूँ ?

शान्ता : तुम आज जीवन से निराश क्यों हो ?

सम्पादक : अब जीवन में कोई उद्देश्य नहीं रहा, शान्ता ! जीवन में सब ओर असफलता । यह असफलता का भार कब तक ढोना होगा ? सोचा था तुम्हारे पास आने से कुछ सान्त्वना मिलेगी । परन्तु यहाँ भी वैराग्य की रागिनी जागृत हो रही है । मैं तुम से नाराज नहीं हूँ, शान्ता ! पर मैं तुम्हारा यह परिवर्तन देखकर चिन्तित हो उठा हूँ कि तुम्हारा भविष्य कहाँ होगा ?

शान्ता : जो भगवान करे । मैं जानती हूँ जो समाज मेरे रूप और यौवन के साम्राज्य में मेरे चरण स्पर्श करता था वह मेरी इस दशा पर परिहास करेगा, मुझे चूहे खाकर यात्रा करने वाली बिल्ली कहकर व्यंग करेगा । मेरी ओर घूरेगा, मुझे ठुकरायेगा ।

मानसिंह : (नशे में प्रवेश करता है) समाज ठुकरायेगा तो क्या...मैं तो नहीं ठुकराऊँगा । मेरी जागीर लुट गई और तुम्हारा रूप और यौवन । तुम और मैं बराबर हो गये । ठुकराने दो समाज को । हम दोनों साथ रहेंगे । (दोनों उठ जाते हैं)

शान्ता : (मानसिंह से) तुम ! नरक के कीड़े ! फिर आ गये यहाँ ! जाओ यहाँ से !

मानसिंह : (आगे बढ़कर) ऊँ हूँ ! (सम्पादक को) कौन, सम्पादक ! अरे यार क्यों मेरे पीछे पड़े हो । सब ओर मुझ पर मोर्चाबन्दी कर रखी है...तुमने ! अरे यार ...तुम्हारी इस अहिंसा की लड़ाई से...मैं हार गया, अब तो मुझे जीने दो । मैंने तुम्हारे लिये राज छोड़ दिया है...तुम मेरे लिए...यह छोड़ दो । देखो यार फोटो मत खींच लेना । नहीं तो कमिश्नर पाठक मेरी जान खा जायगा ।

सम्पादक : आप यहाँ से चले जाइये राजा साहब !

मानसिंह : अच्छा तो अभी जाता हूँ...फिर आऊँगा । करलो तुम प्यार...पर आज से...तुम और मैं...दोनों मित्र हैं...एक ही जगह बैठने वाले । (जाता है)

शान्ता : यह है दुष्ट, जिसने मेरा जीवन नष्ट किया ।

सम्पादक : (गहरी साँस लेकर) ओह ! (आवेश में) इच्छा होती है इस समाज को चकनाचूर करदूँ । (सोचता हुआ इधर-उधर घूमता है) तुम विवाह करलो, शान्ता ।

शान्ता : अब क्यों ?

सम्पादक : तुम्हारी यह स्थिति देखकर मैं यह आवश्यक समझता हूँ । नहीं तो, ये नारकीय कुत्ते तुम्हारा पीछा न छोड़ेंगे । तुम्हारे शेष जीवन को शान्ति भंग हो जायगी । ये प्रतिदिन तुम्हारे द्वार पर आ-आकर भौकेंगे और तुम्हारी नींद हराम हो जायगी ।

शान्ता : तुम कहते हो, विवाह करलूँ ! किस से करलूँ ?

सम्पादक : जिससे तुम्हारी इच्छा हो । तुम्हें एक रक्षक की आवश्यकता है, जो तुम्हारे शेष जीवन का भार उठा सके । जिसमें तुम्हारा विश्वास हो । शायद मैं...

शान्ता : मेरा विश्वास तो अब काल में रह गया है, उसी से विवाह होगा ।

मानसिंह : (प्रवेश कर) नहीं, (आकर बैठ जाता है) अब मैं नहीं...जाऊँगा ।

सम्पादक : राजा साहब ! (हाथ पकड़कर उठाता हुआ) आपको कमिश्नर साहब बुलाते हैं ।

मानसिंह : (हाथ भटकता हुआ) अरे यार, तुमने फिर मेरा फोटो भेज दिया । नहीं, अब मैं नहीं जाऊँगा । मुझे यहीं रहने दो, यार ।

सम्पादक : अरे चलो भी ! (हाथ पकड़कर ले जाता है) अच्छा,

विदा ! (शान्ता उस ओर देखती रहती है)

शान्ता : (व्यथित और चिन्तित-सी घूमती हुई) प्रेम की बेल घूम-फिरकर फिर अपने वृक्ष से जा लगे, परन्तु अब नहीं । अब इसमें बढ़ने की वह शक्ति नहीं है योगेश । क्यों मैं तुम्हारे शेष जीवन में बाधा डालूँ ? (घूमती है, बैठती है, फिर उठती है) मुझ से तुम्हारा जीवन तो सुखी हो नहीं सकता । तुम्हारा समाज तुम्हें नष्ट कर देगा । अब इस जीवन की क्या आवश्यकता है ! (शीशी निकालकर उसको देखती है) उसने ठीक ही तो किया । माँ के कुकर्मों का दण्ड उसका पुत्र... (शीशी देखती हुई) इसके अतिरिक्त क्या दे सकता है ! तो फिर यही सही । (विष-पान और मृत्यु)

मानसिंह : अब तो... (प्रवेश करता है) मैं कभी नहीं जाऊँगा । (शान्ता को देखकर) हैं! यह क्या ? मृत्यु ! यह शीशी कहाँ से आई ? तो पाठक जीवित है ! (उसकी ग्लाउज में छिपे पत्र देखकर) ये पत्र ! (निकालता हुआ) यहाँ कैसे ! (इधर-उधर देखता हुआ) तो चलो । (प्रस्थान)

संवाददाता : (प्रवेश कर) तू... मेरी माँ... (देखकर भयभीत-सा साँसें लेकर) हा आ... चाचा... भेड़िया... (भाग जाता है)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

[मानसिंह की अन्तरंग बैठक का कमरा। एक गुप्त सभा का आयोजन। एक टेबुल के चारों ओर कुर्सियों पर अन्य जागीरदार बैठे हैं। मानसिंह अध्यक्ष के आसन पर है]

मानसिंह : (खड़ा होकर) आप लोगों को यह विदित ही है कि इस गुप्त सभा का आयोजन किस कारण किया गया है। यह मैं आपको पहले बता चुका हूँ। हमारे सम्मुख यह एक गम्भीर समस्या है जो हमारे जीवन और मरण का प्रश्न बना हुआ है। यदि हमारी जागीरें समाप्त हो जाती हैं तो हमारा अस्तित्व सदा के लिए मिट जाता है। इसलिए संगठित होकर हमें एक दृढ़ निश्चय करना है।

एक जागीरदार : यह बात ठीक है कि भारत स्वतन्त्र हो रहा है, पर हमें उससे क्या मतलब ! भारत से अंग्रेजी राज्य तो जाना ही चाहिए। पर जागीरें तो हमारी देशी राज्य में हैं। देशी राज्यों को नष्ट करने की क्या आवश्यकता है ?

दूसरा जागीर० : कौन कर सकता है, हमारी सत्ता को कौन नष्ट कर सकता है ? हम तो तलवार के बल पर शासन करते हैं। जब तक हाथ में तलवार है हमारा

कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता ।

तीसरा जागीर० : पर आपके लोग आपके हाथ में हैं या नहीं ?

दूसरा जागीर० : भय बिन प्रीति नहीं होती है । हम उन विद्रोहियों को तलवार के घाट उतार सकते हैं जो हमारा नमक खाकर नमकहरामी करने चले हैं ।

चौथा जागीर० : जागीरें हमें किसी ने धर्म में नहीं दी हैं । हमने तलवार के बल पर ली हैं । जो तलवार के बल पर जीता है, वही स्वाधीनता की दारू पीता है ।

एक वृद्ध जागीर० : (गम्भीर होकर ऊँचे स्वर में) मुझे दुःख है कि आप सब व्यर्थ की बातें करके अपना समय नष्ट कर रहे हैं । (सब मौन और स्तब्ध रह जाते हैं) आप लोगों ने समय और परिस्थिति को अब तक नहीं पहचाना । आप लोगों के मुख से अब तक दारू की दुर्गन्ध नहीं मिटी । जिसमें तलवार के बल पर दारू पीने की महत्वाकांक्षा जाग रही है, वह इस पवित्र तलवार का उपहास करता है । तलवार का अर्थ भय, आतंक और रक्तपात नहीं है । तलवार का अर्थ है संरक्षण, शान्ति और अभयदान ।

दूसरा जागीर० : आपने अपने दिन पूरे कर लिये हैं । हमारी कठिनाइयों का आप क्या अनुमान कर सकते हैं ?

वृद्ध जागीर० : इस व्यंग को मैं खूब समझता हूँ । पर मैं और अधिक जोर देकर कहना चाहता हूँ कि आपने समय को नहीं पहचाना । हमने अपने समय को ही समझ

कर काम किया, और इसीलिए हम जनता के साथ निभ गये । आपने समय की अपेक्षा दारू को अधिक महत्व दिया । आप बकरे और भैसों पर ही अपनी तलवारें तेज करते रहे और जनता की ओर ध्यान नहीं दिया । जनता आप से आगे बढ़ चली, अब उसको पीछे अपनी ओर खींचना असम्भव है ।

तीसरा जागीर० : और, थोड़ा विचार तो कीजिये । आज के युग में आपकी तलवारें क्या कर सकती हैं ?

मानसिंह : हम कुछ नहीं कर सकते । यही आप कहना चाहते हैं कि राजपूतों की राजपूती दारू के नशे के साथ उतरती और चढ़ती रहती है ।

वृद्ध जागीर० : भारतके बाहर कभी आपकी स्वतन्त्र सत्ता रही है ?

मानसिंह : उसके लिए हमारे पूर्वजों ने अपना रक्त बहाया है ।

वृद्ध जागीर० : आप भूल में हैं । जिस व्यक्ति ने केवल जागीर प्राप्त करने के लिए ही अपना रक्त बहाया हो तो वह सच्चा राजपूत नहीं । जागीर का उद्देश्य यह कभी नहीं रहा । प्रत्येक राजपूत योद्धा तो अपने देश की रक्षा के लिए लड़ा है अपने स्वार्थ के लिए नहीं, और यह जागीर उसके पोषण के लिए दी गई है । जागीर राजपूती पुरस्कार नहीं है । उसकी योग्यता के प्रमाण-स्वरूप उसके पोषण के लिए यह दी गई धरोहर है । उसका भोग ग्रहण करने का अधिकारी वह तभी है जब वह उसके संरक्षण की योग्यता रखता हो । अन्यथा उसे इस धरोहर का त्याग करना ही होगा ।

ती० जागीर० : उसका यह अर्थ कदापि नहीं । हम आप से सहमत नहीं हो सकते । यह हमारी रोटी का ही प्रश्न नहीं हमारे मान, हमारी मर्यादा और हमारी प्रतिष्ठा का भी प्रश्न है । यह ठीक है कि अंग्रेजी राज्य में यद्यपि उससे हमारा कोई सीधा सम्बन्ध नहीं रहा, फिर भी परिस्थितिवश हम उनके आधीन थे । पर, भारत के स्वतन्त्र होने पर हम भी स्वतन्त्र हैं । हम किसी की अधीनता क्यों स्वीकार करें ?

प० जागीर० : यही तो मैं भी कहता हूँ । हम पहले इस बात पर तो एक हो जायें कि जागीर हमारी परम्परागत सम्पत्ति है । इसका रक्षण आवश्यक है । फिर हम आगे की सोचें ।

मानसिंह : आप लोगों में से कोई इस विषय पर कुछ कहेंगे ?

वृद्ध जागीर० : मेरे विचार में आपका यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है कि जागीर एक परम्परागत सम्पत्ति है । इतिहास में इसका प्रमाण वर्तमान है कि अपनी जागीरों का दुरुपयोग करने अथवा किसी अवैधानिक कार्य करने के दण्डस्वरूप कई जागीरें जब्त कर ली गई हैं ।

दू० जागीर० : जिनमें इतना बल न होगा उनकी कर ली गई होंगी ।

ती० जागीर : हमें व्यर्थ का विवाद छोड़कर मुद्दे की बात पर आना चाहिए, जिससे हम किसी निर्णय पर पहुँच सकें ।

मानसिंह : निर्णय यही करना है कि हम किसी भी प्रकार अपने अधिकारों को न छोड़ेंगे । थोड़ा इस बात पर विचार

कोजिये कि क्या सिंह अपने सामने रखे हुए शिकार को किसी भेड़िये के डराने से छोड़ देगा ।

वृद्ध जागीर० : आपकी ये उपमाएँ पुरानी होकर इतनी सड़ और गल गई हैं कि अब उनका कोई अर्थ ही नहीं । मुझे यह कहते हुए दुःख है कि आज क्षत्रियों ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और राज-मद में अपने को इतना नीचा गिरा दिया है कि उन्हें शत्रु और मित्र को पहचानने की संज्ञा भी न रही । हमें अपने कर्तव्य को सामने रखकर यह सोचना चाहिए कि इन जागीरों की जनता हमारे संरक्षण में है, वह हमारी भोग सम्पत्ति नहीं है । इससे अधिक हमारा क्या पतन हो सकता है कि हम अपनी प्रजा को अपना शिकार समझकर अपने को उसका भक्षक कहने में गर्व करें ।

मानसिंह : मेरा यह अर्थ कदापि नहीं । परन्तु शासन करना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है ।

वृद्ध जागीर० : वह अधिकार आपको किसने दिया ?

मानसिंह : अधिकार कोई दान की वस्तु नहीं, जो दी जाय । अधिकार तो लिया जाता है और उसके लिए शस्त्र-बल की आवश्यकता है ।

वृद्ध जागीर० : तो आप जन-बल को कोई महत्त्व नहीं देते ?

मानसिंह : वह तो पैसों से खरीदा जा सकता है और तलवार से बाध्य किया जा सकता है ।

वृद्ध जागीर० : मैं आपको फिर कहता हूँ कि जन-बल ही संसार में प्रबल रहा है । जन-बल के अभाव ने देश

को युगों तक गुलाम बनाए रखा है । आज जन-बल ही ने तो ब्रिटिश साम्राज्य जैसी महान् शक्तिशाली सत्ता को जड़-मूल से उखाड़कर फेंक दिया । उसके सामने हमारी तलवार की क्या शक्ति है ?

दू० जागीर० : उन्होंने राजपूती शक्ति को देखा नहीं, जिन्होंने मुगलों के भी दाँत खट्टे किये हैं ।

वृद्ध जागीर० : यों क्यों नहीं कहते कि अंग्रेजों और मुगलों की गुलामी में ही उन्होंने अपने अस्तित्व का संरक्षण समझा ।

मानसिंह : महाराणा प्रताप…….!

वृद्ध जागीर० : (क्रोधावेश में) देश की स्वाधीनता के विरोधियों को प्रताप के पवित्र नाम को उच्चारण करने का कोई अधिकार नहीं । प्रताप का विरोधी मानसिंह राजपूत ही था । उसी के कारण भूख से तड़पते हुए अपने बच्चों को देखकर प्रताप को रक्त के आँसू पीने पड़े थे ।

मानसिंह : आप मानसिंह का उदाहरण देकर जो व्यंग कर रहे हैं उसको मैं खूब समझ रहा हूँ ।

वृद्ध जागीर० : मैं आपको समझ को सराहना करता हूँ, पर इसका यह अर्थ नहीं कि आप मुझे किसी प्रकार दबा दें । आपने मुझे अपनी सम्मति प्रगट करने बुलाया है, और मैं अपनी सम्मति दे रहा हूँ । यदि आप चाहें कि मैं न बोलूँ तो मैं चला जाता हूँ । परन्तु जाते-जाते आपको चेतावनी दे जाता हूँ कि आपका मार्ग गलत है, आपकी विचारधारा का मूल ही गलत है । उसको

देश-द्रोह के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं कह सकता । यदि आपको अपनी शक्ति बनाये रखना है तो जनता के सद्व्यवहार द्वारा उसमें अपना विश्वास उत्पन्न कीजिये । जनता पर स्नेह से विजय प्राप्त की जाती है । जनता के विरोध से शासन की नींव ढह जाती है । (सवेग प्रस्थान)

ती० जागीर० : (उठता हुआ) मैं भी इन विचारों से सहमति रखता हूँ । मैं मानता हूँ कि अन्तिम सत्ता प्रजा के ही हाथों में रहती है । प्रजा को अपने भाग्य का निर्णय करने का पूरा अधिकार है । मैं अपने व्यक्तिगत अस्तित्व में विश्वास नहीं रखता । (सवेग प्रस्थान)

मानसिंह : जिसकी आशंका थी, वही हुआ ।

एक जागीर० : चलो दो दिवानों से तो मुक्ति मिली ।

दू० जागीर० : अरे, ये बूढ़ले हमारे साथ रहकर भी क्या कर सकते थे ?

मानसिंह : तो अब हम ही रह गये । तो मैं मान लेता हूँ कि आप में से किसी की इच्छा इस मण्डल को त्यागने की नहीं है ।

सब : नहीं ।

मानसिंह : तो फिर मैंने जो योजना आप लोगों को बतायी है, वह आप लोगों को स्वीकृत है ?

एक जागीर० : एक बार फिर सुना दीजिये ।

मानसिंह : मैंने आपको यह कहा था कि इस परिस्थिति में हम प्रकट रूप में कोई विरोध न कर गुप्त रूप से अपना

संगठन दृढ़ कर लें और अधिक से अधिक अस्त्र-शस्त्र एकत्रित कर लें। फिर उचित परिस्थिति में आतंक की लहर उठा दें। हम खड़े होकर प्रतिज्ञा करें (सब खड़े होते हैं) कि आज से हम एक हैं और अपनी संपत्ति की रक्षा के लिये संगठित होकर अन्त तक काम करेंगे। (कुछ देर के लिये शान्ति) तो फिर आज से हम अपना संगठन आरम्भ कर दें। इसमें कोई भी जागीरदार, जमींदार प्रकट रूप में सदस्य रह सकता है। यदि हमारा संगठन बलवान होगा तो हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। (सब उठकर चुपचाप चले जाते हैं)

दूसरा दृश्य

[गाँव के बाहर का मार्ग । कुछ व्यक्ति आते-जाते हैं]

प० व्यक्ति : चलो पाठकजी तो छूट गये ।

दू० व्यक्ति : पर जंत का क्या हुआ, कुछ पता ही नहीं ?

प० व्यक्ति : मेरी समझ में तो अब वह इस संसार में नहीं रहा । यदि होता तो अब तक कभी का आ जाता ।

दू० व्यक्ति० : हाँ, जान तो ऐसा ही पड़ता है कि वह उस गोली-काण्ड में मारा गया और पुलिस ने उसकी लाश को गायब कर दिया ।

प० व्यक्ति : हाँ, कुछ पता ही नहीं चला । सुनते हैं कि पाठकजी को विष देने का षड्यंत्र तो किया गया पर भगवान ने बचा दिया ।

दू० व्यक्ति : सुनते हैं कि जिस आदमी को यह काम सौंपा गया वह स्वयं दारू के नशे में उस विष को खाकर मर गया ।

प० व्यक्ति : लो, ये संवाददाताजी आ रहे हैं, इनसे कुछ पता चलेगा ।

दू० व्यक्ति : आइये, संवाददाताजी !

संवाददाता : जय हिन्द !

प० व्यक्ति : क्यों साहब, क्या सच है ?

संवाददाता : संसार सत्य पर ही तो टिका हुआ है, जोवन एक महान् सत्य है और मृत्यु उसका महानतम् रूप है ।

दू० व्यक्ति : नहीं, नहीं, हम तो पाठकजी की बात पूछते हैं ।

संवाददाता : पाठकजी जीवित तो हैं, यह सत्य है । पर उन्हें उसी महानतम् सत्य में कभी न कभी लीन होना ही पड़ेगा ।

प० व्यक्ति : क्या वे जेल से छूट गये ?

संवाददाता : लोहे के कारागार से छूटना शारीरिक छूट है, शरीर के कारागार से छूटना सच्ची मुक्ति है, और संसार के कारागार से छूटना मोक्ष है । मोक्ष के परे कोई स्थिति नहीं है ।

दू० व्यक्ति : आपकी बात हमारी समझ में नहीं आ रही है ।

संवाददाता : जो मनुष्य इसे समझ लेता है वह मनुष्य मनुष्य नहीं रहता । पाठकजी छूट गये हैं । समाचार है कि वे शीघ्र ही यहाँ के शासक हो जायँगे ।

प० व्यक्ति : तब तो हमें आजादी मिल जायेगी ।

संवाददाता : राज-सत्ता की प्राप्ति आजादी की कसौटी नहीं है। विचारों और कर्म की स्वतंत्रता बाह्य प्रदर्शन मात्र है। उनकी अनियमितता उस उच्छृंखलता की द्योतक है, जिससे व्यक्ति समष्टि का काल-कीट बन सकता है। रहने को घर, पेट भरने को रोटी और पहनने को कपड़ा यही सच्ची आजादी है।

दू० व्यक्ति : हाँ, ठीक बात है। यही तो आजादी की पहली सीढ़ी है।

प० व्यक्ति : तो अभी तो कई सीढ़ियाँ चढ़ना है।

संवाददाता : जीवन के विकास में सीढ़ियाँ ही सीढ़ियाँ हैं। चढ़े जाओ, कोई अंत नहीं। अन्त यदि है तो केवल मनुष्य का। परन्तु, जीवन के उत्थान में मनुष्य का क्या मूल्य ? एक मनुष्य गिरा, उस पर पैर रखकर दूसरा ऊपर चढ़ जाता है। इसी संघर्ष में मानव के उत्थान और पतन छिपे हैं।

प० व्यक्ति : थोड़े ही दिनों में आपके विचार कितने उन्नत हो गए हैं। क्या इससे हम यह नहीं कह सकते हैं कि अब देश में ऐसे व्यक्ति भी हो गये हैं, जैसे एक स्वतंत्र देश में होने चाहिए।

दू० व्यक्ति : ऐसे ही विचारों से हमारा भारत उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

संवाददाता : भारत का भविष्य उसी प्रकार उज्ज्वल है जिस प्रकार प्रातःकाल के लोहित आकाश में सूर्य। अच्छा, चलूँ। (प्रस्थान)

प० व्यक्ति : सच्ची लगन और तपस्या ही मनुष्य को इतना ऊँचा उठा देती है ।

दू० व्यक्ति : लो वे 'जनता' के सम्पादकजी भी आ गये ।
उनसे भी कुछ समाचार मिलेगा ।

प० व्यक्ति : जय हिन्द !

सम्पादक : जय हिन्द ! कहिये, क्या समाचार हैं ?

दू० व्यक्ति : समाचार तो आप बतलाइये ।

सम्पादक : सब ठीक, है पन्द्रह अगस्त को मालूम हो जायगा ।
पाठकजी छूट गये हैं । देखते हैं, वे कैसे शासन करते हैं ?

प० व्यक्ति : पर उस जैत का क्या समाचार है ?

सम्पादक : कुछ पता नहीं चलता, अब तो एक प्रकार से हमें मान ही लेना होगा कि वह अब इस संसार में नहीं है । नहीं तो, उसका ऐसा कोई अपराध नहीं है कि वह अब तक छिपा रहे ।

प० व्यक्ति : हाँ ।

सम्पादक : गाँवों की जनता का सच्चा प्रतिनिधि तो वही है ।
उसके त्याग के आगे पाठक का त्याग कुछ नहीं ।

प० व्यक्ति : पर उसमें शिक्षा की कुछ कमी है । पाठकजी कम से कम मैट्रिक तो पढ़े-लिखे हैं । और, इस बार जेल जाकर तो उन्होंने बड़ा त्याग किया है । जनता का हृदय अपनी ओर खींच लिया है ।

सम्पादक : ऐसा तो सभी अवसरवादी करते हैं । उस गोली-काण्ड में पहले तो उसने लोगों को रोका पर जब

उसने देखा कि उसका नेतृत्व उसके हाथ से निकल कर जैत के हाथों में चला गया, तो वह झट से आगे आ गया । रही शिक्षा की बात सो मैं भी इण्टर तक पढ़ा हूँ और जनता की इतने वर्षों से सेवा कर रहा हूँ ।

दू० व्यक्ति : हाँ, यह बात तो ठीक है ।

सम्पादक : और जेल की बात जो कहें, तो मैं कितनी ही बार जेल जा चुका हूँ । मैंने उन नारकीय जेलों में जो यातनाएँ सही हैं, उनको पाठक तो कल्पना भी नहीं कर सकता । फिर भी मुझे शासन की कोई भूख नहीं है । मेरे पास तो यह पत्र है । इसी के द्वारा जनता की सेवा करना चाहता हूँ । पर यह बात मेरे मन में अब स्पष्ट होता जा रही है कि आजादी मिल जाने पर भी कांग्रेस से देश का कोई हित नहीं हो सकता ।

प० व्यक्ति : क्यों, जिसने देश को मुक्त कराने में इतना त्याग किया, वे कुछ नहीं कर सकेंगे ?

सम्पादक : लोगों को शासन के विरुद्ध भड़काना एक बात है, और शासन करना दूसरी ।

दूसरा व्यक्ति : हाँ, यह तो ठीक है । जो बिगाड़ सकता है, वह बना नहीं सकता ।

प० व्यक्ति : इसीलिए तो मैं कहता हूँ, जैत इस काम के लिए अधिक योग्य होता । यदि वह होता तो...

सम्पादक : यदि वह होता तो भी उसे कोई नहीं पूछता । क्योंकि उसके पीछे पूँजीपतियों का सहारा नहीं था । पाठक पूँजीपतियों का खरीदा हुआ एजेंट है । यदि

वह जनता का सच्चा सेवक है, तो गुमानपुरा में बननेवाली मिल का काम बन्द कर दे, जिसके लिये इतना रक्तपात हुआ; गोली चलानेवाले व्यक्तियों को वह दण्ड दे; और गरीब किसानों की भूमि फिर से मुक्त कर दे ।

दोनों व्यक्ति : अच्छा देखेंगे, क्या होता है ? (प्रस्थान)

सम्पादक : दुनिया अवसरवादियों की है । तो फिर यही सही, मुझे भी अपना मार्ग निश्चित करना होगा । जिसके लिए इतना त्याग किया, इतना कष्ट सहा, उसका यह अपरिणाम ! मेरे देखते हुए मेरा अधिकार दूसरा छोन रहा है । उसका एक मात्र कारण पूँजीवाद है । तो फिर, एक प्रयत्न और—एक नया प्रयत्न; समाजवाद ! समाजवाद !

संवाददाता : (प्रवेश कर) जय हिन्द, श्रीमान जी !

सम्पादक : ओ हो आ गये तुम ! कहाँ गये थे इतने दिन ?

संवाददाता : इस जीवन में किसी का कोई निश्चित स्थान नहीं । एक चक्र की भाँति धरती घूम रही है । मनुष्य स्वयं उसके भीतर घूमता जा रहा है । उसकी कोई निश्चित स्थिति नहीं । फिर क्या बताऊँ, मैं कहाँ था, और कहाँ हूँ ? यह भी पता नहीं कि कहाँ होऊँगा ?

सम्पादक : तुम तो बड़े दार्शनिक हो गये !

संवाददाता : मनुष्य और संसार के बीच में दर्शन का ही सम्बन्ध है ।

सम्पादक : यह क्या रहस्य की बातें कर रहे हो ?

संवाददाता : मनुष्य मनुष्य के बीच का सम्बन्ध बड़ा ही रहस्यमय है। कौन किसका पुत्र है; कौन किसका पिता है? यह किसी को ज्ञात नहीं। मैं वही बात कर रहा हूँ जो आपको ज्ञात नहीं; या ज्ञात होते हुए भी आप उसे गुप्त रखना चाहते हैं। जीवन वास्तव में रहस्यमय है। परन्तु उस रहस्य का उद्घाटन करनेवाला भी तो मनुष्य ही है। पिता पुत्र को पुत्र कहने में लज्जित क्यों है? क्या समाज का भय है?

सम्पादक : क्या कह रहे हो?

संवाददाता : मैं ठीक कह रहा हूँ, पिता जी !

सम्पादक : मैं यह क्या सुन रहा हूँ !

संवाददाता : आप ठीक ही सुन रहे हैं, मेरे पिता ! मैं शान्ता के गर्भ से जन्मा आपका पुत्र हूँ !

सम्पादक : क्या, तुम !

संवाददाता : क्या लज्जा आ रही है, अथवा आश्चर्य हो रहा है? और कुछ सुनना चाहते हैं?

सम्पादक : क्या ?

संवाददाता : आपने जिससे प्रेम किया और फिर जीवन से निराश होकर जिसका त्याग किया, वही शान्ता मेरी माँ, उसने वेश्या के घृणित जीवन से ऊबकर आत्म-हत्या कर ली। उसका शव आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। हा...हा...हा...हा...खूब हँसिये पिता जी ! खूब हँसिये ! आज खुशी का दिन है। हा...हा...हा...हा !

सम्पादक : तुम फिर ऐसा ही संवाद सुनाने आ गये । चलो !

[उदास होकर गर्दन नीची करके संवाददाता के कंधे पर हाथ रखकर जाता है]

तीसरा दृश्य

[एक वन्य पहाड़ी प्रान्त । एक पहाड़ी पर कुछ भोंपड़े हैं । वन हरा-भरा है । एक झरना झरता हुआ नीचे उतर रहा है । भोंपड़ियाँ ऊँची पहाड़ी पर हैं । उनके बाहर स्त्री, पुरुष और बच्चे हैं, कुछ बकरियाँ चरती हुई दिखाई दे रही हैं । नीचे मैदान है । कुछ खेत हैं उनमें धान उग रहा है । सुनहली धूप चमक रही है । आकाश में कुछ बादल हैं, उनमें से प्रकाश अपना प्रभाव डाल रहा है । जैत घूम रहा है । उसकी आकृति में काफी परिवर्तन हो गया है । सिर पर पट्टी बँधी हुई है । आँखों में किसी दृढ़ निश्चय को व्यक्त करने वाली गंभीरता है । विचार-मग्न इधर-उधर कभी घूमता है, कभी वृक्षों को देखता है, कभी भाड़ियों की ओर ताकता है । इस प्रकार वह ऊपर के भोंपड़ों से एक पहाड़ी पर से दूसरी पहाड़ी पर उतरता हुआ नीचे मैदान में आ जाता है और झरने के किनारे बैठ जाता है] ।

निर्मला : (पीछे की पहाड़ियों से उतरती हुई दिखाई देती है ।

वह पहाड़ियों पर चढ़ती हुई उन भोंपड़ियों के पास जा पहुँचती है और जैत के विषय में पूछती है । उनमें से एक व्यक्ति जैत की ओर हाथ से संकेत करता है । जैत—निर्मला उसी पहाड़ी पर से नीचे उतर आती है) क्यों जैत, कैसे हो अब ? क्षमा

करना, मैं बहुत दिनों से तुम्हारे पास न आ सकी ।

अब तो तुम्हें घर चलना होगा ।

जैत : वसुन्धरा की विस्तृत गोद किस घर से कम है । क्या करूँगा वहाँ चलकर ?

निर्मला : सुख से रहना ।

जैत : सुख का प्रलोभन, जीवन को निष्क्रिय बनाने का कितना सुलभ साधन है । प्रलोभन के विशाल समुद्र में सुख की महत्वाकांक्षा उस भयंकर तूफान के समान है, जिसमें अनेकों जीवन-पोत टकराकर चूर-चूर हो जाते हैं ।

निर्मला : हाँ, यदि पोत इतना दुर्बल और जर्जर हो । संघर्ष की आंधियों में दुर्बल पोत का अस्तित्व ही क्या ? हमें तो जीवन को आधुनिक ढंग के युद्ध-पोत के समान बनाना होगा, जो गगन-भेदो गम्भीर घोष करता हुआ और तूफानी लहरों को चीरता हुआ आगे बढ़ जाय ।

जैत : कल्पना के परों में कितना ही उड़ चलो, पर आकाश अनन्त है । एक तूफान पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् असीम सागर की गंभीर शान्ति दूसरे तूफान की चेतावनी है । जीवन का यह संघर्ष कभी समाप्त होगा ?

निर्मला : अब तो समाप्त ही है जैत ! पन्द्रह अगस्त को आजादी की घोषणा होने वाली है ।

जैत : धान पकने के पूर्व ही उर्मियों पर पाला पड़ता हुआ

देखा गया है । धान पक भी गया हो तो क्या ! किसान के लिए उसकी छाती पर जब तक पूँजीपति खड़ा है, उसकी खेती का उसको क्या लाभ ? दुर्बल का संसार में कोई अस्तित्व नहीं ! धन वालों की दुनियाँ में भूखे की पुकार कुत्ते की भौंक है ।

निर्मला : तुम्हारे व्यंग को समझने में मैं कभी भूल नहीं करती जैत ! मेरे हृदय में उठते हुए तूफान को तुम नहीं जानते । तुम्हारे गाँव वालों की छाती पर खड़े होने वाले उस मिल का कारण मैं हूँ । शायद तुम यह सोचते होगे । पर, मैं निर्दोष हूँ । मेरे जीवन की व्यथा को तुम नहीं जानते । जैत, तुम नहीं जानते !

जैत : जानकर करना भी तो क्या है ? समष्टि की व्यथा के सामने व्यष्टि की व्यथा का महत्त्व समाप्त हो चुका ।

निर्मला : तुम्हारी व्यंग-भरी भाषा में जिस क्रान्ति का उद्घोष हो रहा है, उसमें तुम मेरी तूती को नहीं सुन पाते । तुम मेरी व्यथा को जानो तो आश्चर्य में पड़ जाओगे । तुम्हारी सहानुभूति मुझ पर स्वतः जागृत हो जायगी ।

जैत : सहानुभूति और क्रान्ति, दो विरोधी तत्त्व होते हुए भी मूल में एक दूसरे से सम्बन्धित और अन्योन्याश्रित हैं यदि उनमें परिस्थिति का भेद न हो ।

निर्मला : जैत, तुम मुझे दण्ड दो । तुम्हारी विपत्तियों का कारण मैं हूँ ।

जैत : आपके पिता से बदला लेने की कोई इच्छा नहीं है ।

सैद्धान्तिक विरोध में व्यक्ति साधन मात्र है। उसकी सीमाओं से वह स्वयं विवश है। मैं तो गरीब किसानों की हालत पर चिन्तित हूँ। उपकारों का आभार मुझ पर इतना लदा है कि मैं आजीवन उससे मुक्त नहीं हो सकता।

निर्मला : मैंने तुम्हारा कोई उपकार नहीं किया। शायद तुम यह समझते हो कि मेरी सामयिक सेवा के कारण मैं तुम्हारे मार्ग में बाधक हो रही हूँ। पर विश्वास रखो वह पूँजीपति मेरा पिता नहीं ! पूँजीवाद मेरा सहारा नहीं।

जैत : आप धन का मोह त्याग रही हैं निर्मला देवी ! यह किस लिए ?

निर्मला : जिसके पास धन ही न हो वह क्या त्याग करेगी ?

जैत : आप ठीक कहती हैं। निर्धन का त्याग धनवान के दान के सामने तुच्छ है।

निर्मला : यही तो मैं भी कहती हूँ, जैत ! अपनी व्यथा में परायी व्यथा को सुनने का किसे अवकाश है ? तुम अपने मन और बात के धनी, मेरे निर्धन मन और बात की क्या चिन्ता करोगे ? चारों ओर अन्यायी समाज की निष्ठुरता के बीच छटपटाते हुए जीवन की मूककथा सुनने का अवसर तुम्हें भी नहीं।

जैत : आप मुझे व्यर्थ में दोष दे रही हैं। मुझ गरीब ने आपका क्या बिगाड़ा है ?

निर्मला : बिगाड़ा तो मैंने है। इस सारे समाज का मैंने बिगाड़ा

है, जिसका दण्ड मैं आज भुगत रही हूँ ।

जैत : वह क्या ? (आश्चर्य से) निर्मला देवी जी ! वह क्या है ? मुझे शीघ्र कहिये ।

निर्मला : नहीं, जाने दो । कहीं तुम्हारे कठोर हृदय के पत्थर पर आघात न लग जाय ।

जैत : पहाड़ का पत्थर टूट भी जाय तो कौनसा दुर्ग का कँगूरा गिर जायगा ?

निर्मला : फिर भी तुम्हारी निष्ठुरता के आघात का भय तो प्राप्त है । जिस निर्मला को तुम उस पिशाच लक्ष्मी-पति की पुत्री समझते हो उसको वह कलकत्ते से खरीदकर लाया है । उसने अपने व्यापार का मुझे साधन बना रखा है । उस जागीरदार को मदिरा पिला कर और पिस्तौल का डर दिखाकर तुम्हारी जमीनें मैंने छिनवाई हैं । पचास हजार कहकर शराब के नशे में पाँच हजार पर मैंने हस्ताक्षर करवाये । मुझे दण्ड दो, जैत ! मुझे दण्ड दो ! शीघ्रता करो—अन्यथा...

जैत : अन्यथा ?

निर्मला : अन्यथा अवसर चला जायगा । निर्मला का क्रय होने वाला है, उसी जागीरदार के हाथों । अपने पाप के प्रायश्चित्तों में यह दण्ड उस क्रय से कहीं अधिक संतोषप्रद होगा ।

जैत : जैसे एक आग की लहर सिर से पाँव तक दौड़ गई हो ! क्या करना होगा ? कुछ समझ में नहीं आता । मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ, निर्मला देवी जी ?

निर्मला : एक बार मेरे साथ चलो तो ।

जैत : मैं चलूँ ? (सोचता हुआ) यही सही, चलिये । (दोनों का प्रस्थान)

चौथा दृश्य

[गुमानपुरा गाँव की पंचायत का स्थान । धीरे-धीरे लोग एकत्रित हो रहे हैं । प्रत्येक व्यक्ति आता और सबको 'जै राम जी की' करके बैठ जाता है । सम्पादक और संवाददाता सबसे अन्त में आते हैं । सब खड़े होकर अभिवादन करते हैं ।]

सब : जय हिन्द !

सम्पादक और संवाददाता : जय हिन्द !

सम्पादक : पंचायत का कार्य आरम्भ किया जाय ।

सब : हाँ, हाँ !

सम्पादक : तो पहले आप पंचायत का मुखिया तो चुन लीजिये ।

कुछ लोग : आप को ही ।

सम्पादक : नहीं, नहीं, मैं नहीं हो सकता । मुखिया तो गाँव का ही होना चाहिए, जिससे आपके काम में सहायता मिले ।

अन्य लोग : तो पाठकजी ?

सम्पादक : पाठकजी अब आपके साथ न रह सकेंगे । उनका सरकारी काम और पंचायत का काम एक साथ न चल सकेगा ।

कुछ लोग : तो फिर जैत को ?

सम्पादक : जैत ! ठीक तो होगा, पर उसका कुछ पता तो है

नहीं ।

एक व्यक्ति : पता कैसे लगे ? उसका वारण्ट जो है । वह तो पहले रद्द करवाओ ।

सम्पादक : वारण्ट तो रद्द हो जायगा । पर क्या वह जीवित है ?

व्यक्ति : वह जीवित है या नहीं, पर इतना तो हमें विश्वास है कि वह मरा नहीं है । वह जिस स्थान पर घायल होकर गिरा, उसी स्थान पर मैं भी गिरा था । मुझे उस समय होश था और उसे जो लोग उठाकर ले गये थे वे उसके रक्षक थे ।

सम्पादक : पर वह अभी तो नहीं है । अभी का कार्य कैसे हो ?

व्यक्ति : मैं तो कहता हूँ जैत ही हमारा मुखिया हो । हमारे 'किसान-मजदूर-मण्डल' का अगुवा होने के योग्य वही व्यक्ति है । उसी को बनाना चाहिए । और, अभी काम-चलाऊ मुखिया किसी भी व्यक्ति को चुन लिया जाय ।

सब : हाँ, हाँ ! यह ठीक है; यह ठीक है ।

सम्पादक : जैसी आपकी इच्छा, तो चुन लीजिये ।

व्यक्ति : तो काम-चलाऊ तो आप ही बन जाइये ।

सम्पादक : नहीं, यह नहीं हो सकता । मैं तो आपका मार्ग-दर्शन करना चाहता हूँ । अध्यक्ष की स्थिति में यह कुछ भी न हो सकेगा ।

व्यक्ति : तो इस समय मुखिया बिना कौनसा काम रुका जा रहा है ? आप जो बताएँ वह सब सुनें, सोचें, विचारें, और जैसा निश्चय हो वह करें ।

सब : ठीक है, यही ठीक है ।

सम्पादक : अच्छा तो सुनिये, आपको मैंने जिस कारण कष्ट दिया, वह आपके ही हित में है । सब से पहले मैं आपको सूचना देना चाहता हूँ कि अब यह निश्चित हो गया है कि पन्द्रह अगस्त से पाठकजी शासक हो रहे हैं । पर यह आजादी किस प्रकार की होगी, इसका आपको थोड़े ही दिनों में पता चल जायगा । हमें अब पूरा अधिकार है कि हम अपना संगठन मजबूत करें ।

एक व्यक्ति : अब तो, जब सरकार हमारी है तो वह हमारी देख-रेख करेगी ही । फिर इस संगठन की क्या जरूरत ?

सम्पादक : यही मैं भी चाहता हूँ । पर, बिना माँगे तो माँ भी रोटी नहीं देती ।

कुछ लोग : हाँ, हाँ, या बात तो साँची है ।

सम्पादक : अभी तो आप देखेंगे कि क्या होता है ?

एक व्यक्ति : हमारी जमीनों का क्या होगा ?

सम्पादक : मैं यही कहने वाला था । हमारी जमीनों पर मिल खड़ा हो गया है । इसका लाभ उठाया है, जागीरदार ने, उस मिल मालिक से रुपया खाकर । (जागीरदार के दो-तीन व्यक्ति वहाँ आकर खड़े हो जाते हैं, जिससे सबका ध्यान उस ओर जाता है ।)

कुछ लोग : (उनको देखकर) पधारो ! पधारो !

सम्पादक : खड़ा रहने दीजिये । आप अपना काम कीजिये । उन्हें उनका काम करने दीजिये । जागीरदार ही नहीं,

इस मिल में और भी कई लोगों के हिस्से हैं, जिनके नाम मैं यहाँ नहीं बता सकता । पर, इतना निश्चित है कि यह मिल किसानों की छाती पर खड़ी की गई है । इसमें किसानों और मजदूरों का शोषण होगा ।

एक व्यक्ति : तो पहले पाठकजी से यही माँग करनी होगी कि इस मिल को बन्द किया जाय ।

सम्पादक : ठीक है, पर मिल बन्द करने से अब आपकी जमीनें वापिस तो नहीं मिल सकतीं ।

एक व्यक्ति : दूसरी माँग यह हो कि हमारी जमीनें वापिस मिलें ।

सम्पादक : यदि यह न हो तो उसकी जगह दूसरी जमीनें और उसको तैयार करने के लिए खर्चा मिले ।

एक व्यक्ति : पर जमीनें हमारे घर के पास हों ।

सम्पादक : हाँ, ठीक है । पर इन बातों के लिए संगठन की आवश्यकता है । और, अपनी माँगें मनवाने के लिए धन की भी आवश्यकता है ।

एक व्यक्ति : धन का क्या करना है ?

सम्पादक : यह युग प्रचार का है । बिना प्रचार के राजा पर प्रभाव नहीं पड़ता । जब बाहर के लोगों में इसका प्रचार होगा, तभी राज पर दबाव पड़ेगा । पर आपको इसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । मेरा पत्र आपकी सेवा करता रहेगा । समय-समय पर आपका मार्ग-दर्शन करता रहेगा । केवल आपको कुछ सहायता करनी होगी । प्रत्येक व्यक्ति 'जनता' को कुछ चन्दा दे और

उसमें रुचि रखे । इसके लिए आपको 'जनता' की एक प्रति मुफ्त मिलेगी ।

सब : ठीक है, ठीक है ।

जागीरदार का व्यक्ति : सुणो हे भाई पेंचो ! राजा का भोग अब तक वसूल नहीं हुआ है । राज का हुकम है कि कल साँझ तक राज का भोग-भण्डार भर जाना चाहिए । हुकम न माननेवालों के साथ कानूनी कार्यवाही की जायगी और भोग के साथ पिछले दो वर्षों का हाँसिल जो अकाल के कारण वसूल नहीं हुआ है, वह सब आ जाना चाहिए ।

एक व्यक्ति : लो साहब ! आ गया, यमराज का बुलावा ।

सम्पादक : शान्त रहिए, आप इसकी चिन्ता न करें ।

एक व्यक्ति : जागीरदारी का...

सब : नाश हो !

सम्पादक : आप लोग शान्ति रखें । यदि संगठित होकर काम करेंगे तो सब ठीक हो जायगा । आप लोग बिलकुल न डरें आपका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता । इस प्रथा को हमें बन्द करना होगा । आप पन्द्रह अगस्त तक रुक जायें ।

सब : ठीक है, हम कुछ नहीं करेंगे ।

जागीरदार का व्यक्ति : नहीं दोगे तो लाठी के बल से वसूल किया जायगा, समझे !

सब : अरे भाई, जाओ न । अपना रास्ता नापो ।

[कुछ लोग उसको धकेलते हैं । भीड़ ही में से 'जागीर-

दार के कुछ व्यक्ति खड़े हो जाते हैं और लाठियाँ चलाते हैं ।
कुछ पर आघात कर भाग जाते हैं ।]

सम्पादक : किले की दीवार जब गिरती है तो भी किसी को
दबाकर । गरीबों की आजादी में कितनी बाधाएँ !
मैंने आपसे कहा न था कि शान्ति रखिये । फिर छेड़
दिया, आपको आज की पंचायत यहीं बन्द करनी होगी ।
नहीं तो फिर कोई बखेड़ा खड़ा होगा । पाठकजी से
मिलने के पहले हम फिर किसी दिन मिलेंगे । (सब
जाते हैं, सम्पादक और संवाददाता रह जाते हैं) चलो
बेटा, इस तरह काम होता है । समझे !

संवाददाता : हाँ, पैसा भी मिल गया और पत्र के लिए मसाला
भी । (दोनों का प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

[जागीरदार मानसिंह के मकान की चतरशाली । कमरे
में कई चित्र हैं । इनमें से अधिकतर चित्र नग्न स्त्रियों के और
विलास के द्योतक हैं । कुछ कुर्सियाँ लगी हुई हैं । जागीरदार
का प्रवेश । उसके सिर पर काली पगड़ी बँधी हुई है । आकर
वह इधर-उधर घूमता है । फिर अपनी कुर्सी के पास आकर
खड़ा हो जाता है और सोचता है ।]

मानसिंह : हूँ, आजादी ! जनता की आजादी और हमारी
बरबादी ! बिना हुकूमत के जनता कभी किसी की
रही है ? भेड़-बकरी हैं, भेड़-बकरी ! तलवार के बिना
कभी इन पर शासन किया है किसी ने ? देख लूँगा

यदि हम बरबाद हो गए तो इन्हें पहले बरबाद करके छोड़ेंगे (एक जागीरदार का प्रवेश। उसका वेश बदला हुआ है, जिससे सहसा पहचाना नहीं जाता) तुम कौन हो ? किसकी आज्ञा लेकर भीतर आये ?

जागीर० : आज्ञा ! मुझे किसी की आज्ञा लेने की जरूरत नहीं पड़ती। मुझको कौन रोक सकता है ?

मानसिंह : क्या पहरेवाले सो गये ?

जागीर : सोते हों या जागते, (पिस्तौल दिखाकर) पाँच हजार रुपया चाहिए, इसी वक्त।

मानसिंह : (हाथ से पिस्तौल छीनता हुआ) किसको डराता है ? (दाढ़ी पकड़ लेता है तो बनावटी दाढ़ी उसके हाथ में आ जाती है) अरे कुबेरसिंहजी ! पूरे डाकू हैं आप तो। सब तैयार हैं न ?

जागीर० : हाँ, आज पन्द्रह अगस्त है। आज हम आजाद हैं। अब जैसे चाहें वैसा कर सकते हैं इसलिए यह पहली धाड़ आपके ऊपर। (हँसता है)

मानसिंह : (हँसता हुआ) मुझ पर ? बहुत ठीक। लीजिये, (जेब से नोट निकालकर) ये पाँच हजार।

जागीर० : चलो बोहणी तो अच्छी हुई। अच्छा, चलूँ।

मानसिंह : किधर ?

जागीर० : अपना काम पूरा करने। आपके पाठक को राजगद्दी मिल रही है तो शुभ मुहुर्त होना ही चाहिये। देखें कैसे सँभालता है।

मानसिंह : अरे साला क्या राज करेगा ? जिन्दगी भर तो

चने बेचे हैं । अच्छा, पधारो । सफलता चाहता हूँ ।

[जागीरदार का प्रस्थान]

कामदार : (प्रवेश कर) अन्नदाता !

मानसिंह : क्यों, आइये ।

कामदार : एक अर्ज है ।

मानसिंह : क्या ?

कामदार : आज के शुभ दिन यह काली पगड़ी...

मानसिंह : बड़ी विचित्र मालूम होती है न ?

कामदार : हाँ, अन्नदाता ! अशुभ भी है । आज तो भारत के
त्यौहार का दिन है ।

मानसिंह : आज का दिन विचित्र है और पगड़ी भी विचित्र ।

नौकर : अन्नदाता ! पाठकजी ।

मानसिंह : कामदार साहब ! आप जाकर ले आइये । (कामदार
जाता है । मानसिंह कुछ सोचता है) तो मुझे उसके
लिए खड़ा होना पड़ेगा ? (विचार-मग्न) जिसके
मैंने लात-घूँसे लगाये... (सोचता हुआ चला जाता है)

[पाठक और कामदार का प्रवेश]

पाठक : कहाँ हैं आपके राजा साहब ?

कामदार : आप यहाँ बिराजिये, अभी पधारते हैं ।

मानसिंह : (प्रवेश कर) पधारिये ।

पाठक : (उठकर) जयहिन्द !

मानसिंह : (बैठकर) बिराजिये । (पाठक बैठता है) आपको इतना
कष्ट देने का खेद तो है, पर क्या किया जाय ? आखिर
हमें भी तो भूख लगती है न पाठकजी !

पाठक : खैर, उस बात को छोड़िये । आप उसकी कोई चिन्ता न कीजिये आपको कोई कष्ट न होगा ।

मानसिंह : यह तो आपको बड़ी (व्यंग से) कृपा है । आपकी तपस्या आज सफल हुई । आज से आप यहाँ का शासन सँभाल रहे हैं । मैं आशा करता हूँ कि जिस प्रकार मैंने अपनी प्रजा को अपनी संतान समझा है, उसी प्रकार आप भी समझेंगे । यह खेतो आप ही के लिए पका रखी थी । अब आप अपना काम सँभालिए । और उसका उपभोग कीजिये । (हाथ मिलाने के लिए हाथ आगे बढ़ाता हुआ) कहिये, अब तो आपके मिजाज अच्छे हैं हुआ ?

पाठक : अरे साहब, मेरा क्या मिजाज ? मिजाज तो राजा-महाराजाओं के होते हैं । मैं तो जनता का सेवक हूँ । आज यहाँ तो कल फिर जेल में ।

मानसिंह : जेल में !

पाठक : हाँ, अन्याय के राज्य में न्याय का स्थान जेल में है ।

मानसिंह : अब आप पर कौन करेगा अन्याय ? अब तो आप का है राज और फिर भी आप नाराज ? आपको अपने इस पद का अभिमान के साथ भोग करना चाहिए ।

पाठक : अभिमान इतना महान् है कि वह निरभिमान के द्वार में प्रवेश करना नहीं चाहता ।

मानसिंह : आप जैसे निरभिमानी और त्यागी महात्माओं से देश को बहुत आशा है । आप जैसे महात्माओं से भारत का कल्याण होगा ।

पाठक : नहीं, मैं नाराज नहीं हो रहा । मेरे हृदय में आपके प्रति उतना ही आदर है राजा साहब जितना पहले था । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अपनी जनता और राज्य के प्रति अपनी पूर्ण भक्ति का परिचय देता रहूँगा । जन-हित और राज-हित को एक समझूँगा ।

मानसिंह : विश्वास दिलाता हूँ कि मेरे हृदय में किसी के प्रति कोई वैर-भाव नहीं और न किसी से कोई बदला ही लूँगा ।

पाठक : आप से देश को ऐसी ही आशा है, पर एक बात...

मानसिंह : कहिये ।

पाठक : आज के शुभ दिन यह काली पगड़ी ?

मानसिंह : हाँ, ठीक तो है । सावन के बरसते हुए मेघों के बीच क्या यह काला रंग क्या उपहासास्पद है ? पर छोड़िये इसको । यह मेरा व्यक्तिगत प्रश्न है ।

पाठक : परन्तु ध्वजारोहण के समय यह काली पगड़ी ? ऐसी खुशी के समय !

मानसिंह : खुशी का समय ? जिसके सुख की नींद हराम हो गई हो; भविष्य दर-दर के भिखारी के रूप में जिसको देखने की प्रतीक्षा करता हो; उसके लिए यह खुशी का समय ! (शुष्क हँसी हँसता हुआ) खैर, जाने दीजिये । आपको कौनसा मकान चाहिये ? बोलिये, वह कोठी ठीक रहेगी ? चाहें तो (चतरशाली के चित्रों की ओर संकेत करता हुआ) यह ले लीजिये ।

पाठक : नहीं, मुझे तो वह कोठी ही ठीक रहेगी । मैं आपके आराम में कोई बाधा नहीं डालूँगा । पर ये...नग्न चित्र ! अब तो हटाइये इन्हें ।

मानसिंह : कैसे हटाया जा सकता है इन्हें । बाप-दादाओं की परम्परागत सम्पत्ति । फिर आपके राज में भी तो कुछ हटाने के लिए रहना चाहिये । चलिये । (बाहर जय-घोष की ध्वनि) आपकी प्रजा पुकार रही है । ध्वजारोहण कर डालिये ।

पाठक : चलिये । (दोनों उठते हैं)

मानसिंह : (अलमारी की ओर बढ़ता हुआ) ठहरिये ! (अलमारी में से दारू निकालकर पीने लगता है)

पाठक : अरे, यह क्या कर रहे हैं आज के दिन...

मानसिंह : आज तो पी लेने दीजिये । कल तो आपके राज में बन्द हो ही जायगा । (पीकर) अब चलिये । (दोनों का प्रस्थान)

[दृश्य बदलता है । जनता के बीच ध्वजारोहण । पाठक और मानसिंह एडमिनिस्ट्रेटर के सामने शपथ ग्रहण करते हुए दिखाई देते हैं ।]

छठा दृश्य

[निर्मला के घर का बाहरी कमरा । जैत का प्रवेश]

जैत : (धूमता हुआ और कभी रुककर विचारता हुआ) आजादी आई । पर, यह कैसी आजादी ! सब ओर रक्त-पात ! जहाँ हृदय हर्ष से फूलकर पहाड़ होते जा रहे हैं, वहाँ उन्हीं के बीच में, रक्त की नदी उन्हें गहराई

तक काटकर, वैमनस्य का मार्ग बना रही है। अमृत प्राप्त करने के पूर्व विष अपना अंतिम प्रभाव दिखाना चाहता है। आजादी मिली तो उसकी रक्षा गले पड़ो। संघर्ष ही जीवन का गति-चक्र है।

निर्मला : (प्रवेश कर) क्या सोच रहे हो ?

जैत : हूँउ... (उधर न देखता हुआ)

निर्मला : क्यों, कैसे हो ? क्या सोचते हो ?

जैत : सोचता हूँ...

निर्मला : क्या ?

जैत : कुछ नहीं, यही कि देश स्वाधीन हो गया।

निर्मला : हाँ, इसके लिए देश को बड़े-बड़े त्याग करने पड़े हैं।

जैत : त्याग से मिली हुई आजादी की रक्षा भी त्याग से ही होती है।

निर्मला : परिस्थितियाँ सब अपने आप करा देती हैं।

जैत : पर, जब तक मजदूर और किसान भूखे और नंगे हैं तब तक यह आजादी किस काम की ?

निर्मला : अभी उसके लिए सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है। बाह्य आजादी मिल गई पर उसकी रक्षा के लिए सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है।

जैत : अभी तो संघर्ष का बिगुल बजा ही है। अब मुझे शीघ्र जाना होगा। अब मैं इस प्रकार छिपकर नहीं रह सकता।

निर्मला : तो लो यह तुम्हारा वारंट रद्द हो गया।

जैत : (लेकर पढ़ता हुआ) इस पर तो पाठकजी के हस्ताक्षर हैं।

निर्मला : हाँ, वे यहाँ के एडमिनिस्ट्रेटर नियुक्त हो गये हैं। सब से प्रथम उन्होंने इसी पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं।

जैत : पर इतना भार पाठकजी एकदम कैसे सँभालेंगे ?

निर्मला : उनके साथ एक एडवाइजर रहेगा।

जैत : चलो, यह तो अच्छा संवाद है। अब मेरी इच्छा यहाँ ठहरने की नहीं। मुझे अपने घर की बहुत याद आ रही है। सब लोगों ने तो सोच लिया होगा कि जैत मर गया। एक बार फिर उन्हें मुँह दिखा दूँ तो वे लोग प्रसन्न होंगे।

निर्मला : वहाँ जाकर क्या करोगे, वहाँ तुम्हारा है ही कौन ?

जैत : (दीर्घ निश्वास लेकर) हाँ, कोई नहीं !

निर्मला : तो यहीं ठहरो, यह घर भी तुम्हारा ही है।

जैत : नहीं, यहाँ मुझे अच्छा नहीं लगा। आपने मेरी जो सहायता की उसका मैं जन्म भर आभारी हूँ, पर मेरे प्राण बच गये इसका मुझे दुःख है।

निर्मला : दुःख है !

जैत : हाँ, इन प्राणों का क्या मूल्य है यदि देश के काम न आये ? समाप्त हो जाते, उसी भूमि पर, तो अच्छा होता। (विचार-ग्रस्त हो) मैं अब भी वहीं मरना चाहता हूँ, उसी पवित्र भूमि में।

निर्मला : ये प्राण अमूल्य थे तभी तो बच गये।

जैत : कोई लाभ नहीं, इनके बचने से। किसको लाभ हुआ, इनके बचने से ?

निर्मला : मुझे तो लाभ है। मेरे लिए ही सही। तुम्हारे प्राण

अमृत्यु थे । मैंने भगवान से प्रार्थना की और उन्होंने बचा दिया ।

जैत : अब मुझे किसी तरह मेरे गाँव पहुँचा दो । इतनी कृपा और...

निर्मला : अभी तो मानसिक अस्वस्थता...

जैत : नहीं, वह तो वहाँ जाने पर ठीक होगी । अब अधिक ठहरना नहीं चाहता । (सिर में चक्कर आने लगते हैं । सिर पर हाथ रखकर प्रदर्शित करता हुआ सहारे के लिए संकेत करता है । निर्मला उसे सँभालती है)

निर्मला : चलो, भीतर चलो । (हाथ पकड़कर ले जाती है)

[दृश्य-परिवर्तन । निर्मला का एक कमरा जिसमें जैत के रहने, पढ़ने और सोने की व्यवस्था है । एक मेज पर कुछ पुस्तकें हैं । कुछ पुस्तकें आलमारी में रखी हैं । अन्य आवश्यक सामान और कुछ साधारण सजावट है । निर्मला जैत को लेकर आती है । उसके सिर में पट्टी बँधी है । निर्मला उसे सुला जाती है । नौकर दवा लेकर आता है]

नौकर : दवा लीजिये ।

जैत : नहीं, रहने दो ।

नौकर : नहीं, बाबू ।

जैत : देखो, तुम मुझे बाबू मत कहो ।

नौकर : क्यों, मालिक ?

जैत : मुझे बाबू और मालिक कहना अच्छा नहीं लगता । मैं तुमको अपने ही समान समझता हूँ । तुम में और मुझ में अन्तर ही क्या है ?

नौकर : मैं नौकर हूँ, और आप बड़े हैं। हमारे मेहमान हैं।

जैत : मैं बड़ा आदमी नहीं, एक साधारण करसा हूँ।

नौकर : यही आपका बड़ापन है।

जैत : कहाँ, मैं तो तुम से छोटा हूँ।

नौकर : भगवान के लिए ऐसी बात न करें।

जैत : नहीं, नहीं, मैं ठीक कह रहा हूँ।

नौकर : यह आपका प्रेम है।

जैत : प्रेम (कुछ व्यथित-सा) नहीं, नहीं, मैं किसी से प्रेम नहीं करता भाई ! तुम जाओ। (नौकर जाता है। जैत इधर-उधर घूमता है फिर एक आराम-कुर्सी पर बैठ जाता है। सिर पर हाथ रखकर कुछ देर तक बैठा रहता है। फिर सिर उठाकर) प्रेम, एक विस्तृत स्वप्न है या किसी अविकसित जीवन की समाधि, जिस पर काल का कठोर शिलालेख है ! स्मृतियों के बादल और आँसुओं की वर्षा से ही जीवन अंकुर हरा-भरा रहता है। (उठकर घूमता है) एक युग बीता और दूसरा आया। परिस्थितियों ने पलटा खाया और हम कहाँ-से-कहाँ हो गए। केवल स्मृतियों का एक कुञ्ज बनता जा रहा है। उस कुञ्ज के अन्तःपुर में क्या है ? उससे हम दूर होते जा रहे हैं।

निर्मला : (चिन्तित-सी प्रवेश कर कुछ देर देखती रहती है)
जैत ! (कोई उत्तर न पाकर कुछ देर खड़ी रहती है फिर चली जाती है)

जैत : (निर्मला को कोई उत्तर न देता हुआ) नई घटनाओं का

कालक्रम भी इतना द्रुत है (गम्भीर मुद्रा में बैठता हुआ) कि हम उसकी होड़ में पीछे रह जाते हैं। परन्तु मनुष्य ! मनुष्य तो घटनाओं का निर्माता है। वह कैसे पीछे रहेगा ? (पुस्तकों की ओर देखकर) एक-एक घटना में एक-एक जीवन का इतिहास बद्ध हो गया है। (एक पुस्तक उठाकर) सन् सत्तावन और बयालीस का विद्रोह ! (पुस्तक खोलकर देखता हुआ) विद्रोह ! मनुष्य की प्रवृत्ति विद्रोहात्मक है ! रचनात्मक नहीं ? परन्तु इस प्रवृत्ति ने मनुष्य को कितना आगे बढ़ाया ? विद्रोह और क्रांति, जीवन के दो विकास-चक्र हैं। जब ये राजनीतिक गति प्राप्त करते हैं तो कितनी उथल-पुथल मच जाती है। जीवन कितना व्यस्त, त्रस्त और अशान्त हो जाता है। सर्वनाश के महाभारत शंखनाद करते हुए चले आते हैं। एक विश्राम के पश्चात् दूसरे; और, दूसरे के पश्चात् तीसरे की आशा उमड़ी रहती है। पर, कहीं...शान्ति नहीं...मिलती। (प्रस्थान)

निर्मला : (प्रवेश कर) अरे, जैत ! जैत ! कहाँ गया ? (जाती है)

जैत : (प्रवेश कर) जीवन का घटना-चक्र अपनी तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है। पर थकान ! कहीं ! इधर-उधर भाँकने को भी अवकाश नहीं ! अविराम गति से निरन्तर बढ़ते जाओ ! बढ़ते जाओ ! जिसने कहीं इधर-उधर भाँका और पैर फिसला ! जिसने पैर रोका, वह अपने मार्ग

के किनारे से कोसों दूर धकेल दिया गया । (हाथ सिर पर टिकाकर बैठ जाता है । निर्मला आती है । कुछ देर इधर-उधर देखती रहती है) फिसल पड़ा हूँ मैं भी, अपने मार्ग से कहाँ कितनी दूर ! कुछ पता नहीं ! अब तो एक-एक दिन कारावास के समान...

निर्मला : कहाँ फिसल पड़े हो, जैत ? कौन सा कारावास ?
(कोई उत्तर न पाकर इधर-उधर चिन्तित-सी घूमती हुई चली जाती है)

जैत : (हाथ से पुस्तक फेंकता हुआ) जीवन एक महान् बन्धन है, फिर मुक्ति कहाँ ? जीवन की शान्ति भंग हो जाने के पश्चात् जीवन जीवन नहीं रहता । क्रांति और विद्रोह समाज का राजनीतिक शोषण है । (दूसरी पुस्तक उठाकर) और साम्राज्यवाद ? साम्राज्यवाद का अन्त हो चुका । पर क्या, इससे जीवन में शान्ति मिल सकती है ? (हाथ पर सिर टिकाकर सोचता है और फिर पुस्तक को फेंक देता है) नहीं ! (निर्मला प्रवेश कर कुछ देर खड़ी रहती है और फिर कुर्सी पर बैठ जाती है) नहीं ! नहीं ! (तीसरी पुस्तक उठाकर) 'पूँजीवाद !' (उन्माद में हँसता हुआ) हहह... पूँजीवाद वर्तमान राजनीति का सहायक हो, अथवा शत्रु ? (सोचता हुआ) हाँ, उस पाठशाला की स्मृति जाग उठी । एक ने कहा पूँजीवाद अच्छा है; दूसरे ने कहा, बुरा । सारा बाजार काला हो गया, फिर भी उसे सफेद समझकर उस पर और कालिक चढ़ाने की प्रवृत्ति

कितनी घृणाजनक है ? मनुष्य की स्वार्थ-वृत्ति कितनी घृणाजनक हो गई है ? धन के आगे जीवन का कोई मूल्य नहीं ! समुद्र के बीच मनुष्य प्यास से छटपटा रहा है ! भोजन उसके सामने है, पर उसके बीच अकाल की खाई खोद दी गई है ! कपड़ों की गाँठें नदी में बही चली जा रही हैं और वह नग्न दशा में किनारे पर खड़ा देख रहा है ! गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में उल्लू बोल रहे हैं और वह भिखारी नीचे मार्ग पर पड़ा हुआ काल की प्रतीक्षा कर रहा है । (निर्मला उठती है और अनमनी-सी घूमती हुई चली जाती है । जैत उठाकर तीसरी पुस्तक को फेंकता है और चौथी पुस्तक उठाकर उसे देखता हुआ) 'समाजवाद !' राजनीति का दूसरा चक्र ! समाज में व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं ! समाज के लिए व्यक्ति का महत्त्व कितना महत्त्वहीन है ! पूँजीवाद के भयंकर युद्ध के पश्चात् भी व्यक्ति अशान्त है । (पुस्तक फेंक देता है और सिर को हाथ पर टिकाकर बैठ जाता है ।)

नौकर : बाबू, दवा पी लीजिए ।

जैत : हूँ, आज तुम लाये, दवा ? अच्छा रख जाओ, यहाँ । मैं पी लूँगा । (नौकर दवा रख जाता है) पूँजीवाद के रोगी को समाजवाद की दवा क्या होगी ? (सामने देखकर पुस्तक उठाता हुआ) साम्यवाद ! विद्रोह और क्रांति के खूनी चक्र जीवन को जब इस परिस्थिति पर पहुँचा देते हैं तब जीवन कितना जर्जर हो जाता है ?

विद्रोह और क्रान्ति के खूनी चक्रों में पिलनेवाला जीवन कभी स्थिर और शान्त नहीं रह सकता । पर उस भयानक चक्र में जीवन अवश्य पिसेगा । वह बच नहीं सकता । (उठकर पुस्तक जोर से फेंकता हुआ । वेग से प्रस्थान)

निर्मला : (प्रवेश कर) जैत ! तुमने दवा नहीं पी ? (खाली कुर्सी देखकर) अरे, किधर गये तुम ? जैत ! जैत ! अरे रामू ! (नौकर जाता है) कहाँ गये जैत बाबू ? दवा नहीं पिलाई तुमने, उनको ?

नौकर : पता नहीं, अभी तो यहाँ बैठे थे । उन्होंने कहा—‘यहाँ रख दो, मैं पी लूँगा ।’ मैं रख गया ।

निर्मला : मैंने तो तुमको दवा पिलाकर आने को कहा था न ? उनका दिमाग खराब हो रहा है । देखो, किधर गये । कहीं गिर न पड़ें । (नौकर जाता है । निर्मला थोड़ी देर घूमती है) जैत ! जैत ! कहाँ गये, तुम ? (घबराती हुई)

जैत : (आकर) कहीं शान्ति नहीं; न हृदय में शान्ति, न बाहर ! (दूसरी पुस्तक उठाकर) अशोक-चक्र ! (कुछ शान्त मुद्रा बनाकर दीर्घ-निश्वास के साथ) राजनीतिक घटना-चक्रों के बीच यह अशोक-चक्र ! सौरचक्रों में घूमते हुए पिण्डों के बीच सूर्य के समान, भगवान् बुद्ध ! तुम्हारा यह अहिंसा-चक्र ही परम शान्ति का दाता है । (बैठने लगता है । निर्मला आती है)

निर्मला : जैत ! कहाँ चले गये थे, तुम ? दवा नहीं पी ?

जैत : राजनीति के अनेक रोगों की रामबाण दवा आज मैंने पी ली है । अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ ।

निर्मला : नहीं, अभी तुम स्वस्थ नहीं हो ।

जैत : बिलकुल स्वस्थ हूँ, बाई साहब ! अब मैं अपने घर जाऊँगा ।

निर्मला : क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगता ?

जैत : नहीं, बिलकुल नहीं ।

निर्मला : कैसा लगता है ?

जैत : जैसे आग में बैठा होऊँ ।

निर्मला : तुम्हारे गाँव से यह जगह आराम की नहीं है ?

जैत : यह तुम्हारे लिए है । जो जहाँ है वह वहाँ अच्छा खिलता है । उसे वहीं खिलना चाहिए ।

निर्मला : आज मैं तुम्हें एक सुख-समाचार सुनाने आई थी ।

जैत : सुख-समाचार क्या ?

निर्मला : मेरा विवाह निश्चित हो गया है, सेठ करोड़ीमल के पुत्र हजारीमल से ।

जैत : हाँ ! तो मुझे बहुत खुशी है । (हँसकर) लाख की पुत्री, करोड़ के पुत्र, हजार की सम्पत्ति हो रही है । लाख, करोड़ और हजार कितना अच्छा संयोग है !

निर्मला : इस संयोग में तुम्हारा कितना मधुर व्यंग !

जैत : व्यंग नहीं, मैं बहुत खुश हूँ आज ।

निर्मला : खुश हो तो मेरी बात मानां ।

जैत : कहिये ।

निर्मला : तुम मेरे ब्याह तक यहीं ठहरो ।

जैत : नहीं, एक बार एक दिन के लिए ही वहाँ जाकर पीछे
आ जाऊँगा ।

निर्मला : क्या सचमुच तुम मेरे ब्याह से खुश हो ?

जैत : क्यों नहीं ।

निर्मला : मैं तो नहीं हूँ ।

जैत : क्यों, इतना धन पाकर भी खुश नहीं हो ?

निर्मला : धन तो हाथ का मैल है । ब्याह मेरे लिये आनन्द
का सन्देश नहीं ।

जैत : क्यों ?

निर्मला : मेरा उसमें मन नहीं लगता ।

जैत : तो मन किस में लगता है ?

निर्मला : जैत... !

जैत : बोलो क्या ?

निर्मला : मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी ।

जैत : नहीं, यहीं रहो और ब्याह करो ।

निर्मला : नहीं, मैं ब्याह नहीं करना चाहती । मैं तुम्हारे साथ
चलना चाहती हूँ ।

जैत : कैसी बात करती हैं आप ? ब्याह न करेंगी तो मुझे बद-
नाम करेंगी ?

निर्मला : ऐसा न कहो ।

जैत : क्यों, आपको चोट पहुँची ? क्षमा कीजिये ।

निर्मला : नहीं, एक बार मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा आऊँ, फिर
चली आऊँगी । मैंने पिताजी से आज्ञा ले ली है । एक
घंटे बाद ही हमें स्टेशन चलना होगा । तैयार हो जाओ ।

जैत : पर तुम्हारी शादी कब है ?

निर्मला : उसमें अभी एक महीने की देर है । तब तक हम लौट आयेंगे ।

जैत : अच्छा तो तुम जाओ, मैं अभी तैयार होता हूँ ।

निर्मला : अच्छा । (प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन । सेठ के मकान का बाहरी दृश्य । डाकू के वेश में जागीरदार कुबेरसिंह और उसके साथ चार व्यक्तियों का प्रवेश]

कुबेरसिंह : (इधर-उधर स्थान देखकर) देखो, इस खिड़की के नीचे मेरा ऊँट खड़ा रहे । सब लोग यहाँ से सौ-सौ गज की दूरी पर तैयार रहेंगे ।

प० व्यक्ति : इतनी खतरे की स्थिति ही नहीं आवेगी, अन्नदाता !

दू० व्यक्ति : हाँ, पुलिस तो अपने वश में है ही ।

कुबेरसिंह : पुलिस के कुत्ते अपने बाप के भी नहीं होते ! लो, यह कागज लक्ष्मीचन्द को देना, यह उसके दरवाजे पर चिपका देना, यह पड़ोसियों को सुना देना कि हम केवल लक्ष्मीचन्द को ही लूटेंगे, कोई हम से डरे नहीं । हम किसी का कुछ नहीं करेंगे, हाँ, जिसने हमारा विरोध किया, उसे हम गोली से उड़ा देंगे । अब मैं जाता हूँ । सब काम सावधानी से करना । (एक ओर कुबेरसिंह और दूसरी ओर अन्य व्यक्तियों का प्रस्थान)

प० व्यक्ति : क्या करें ? यहाँ पर भी नहीं । जैत अब भी मिल जाय तो अच्छा हो । सुना था इसी सेठ के मकान

में है । पर, यहाँ भी नहीं । इसी ने कहीं उसे छिपा रखा है ।

दू० व्यक्ति : अरे आग लगाओ इस सेठ को । इसी ने हमारे जैत को मारा है । इसी ने हमारी छाती पर मिल खड़ा कर दिया ।

प० व्यक्ति : हाँ, अब तो हमें आखिरी काम करना ही होगा, चलो । (दोनों जाते हैं)

[पट परिवर्तन । निर्मला के कमरे में आग की लपटें दिखाई देती हैं]

लक्ष्मीचन्द : (घबराया हुआ) निर्मला ! बचो भागो ! आग !
आग ! निर्मला ! निर्मला ! किधर गई ! आग !
आग ! (इधर-उधर भागता और ढूँढता है)

चौथा अंक

पहला दृश्य

[पाठक का बँगला । कमरा अंग्रेजी ढंग का सजा हुआ है। पाठक बैठा है, हाथ में अखबार है। उसका सलाहकार सामने बैठा है ।]

पाठक : ओह ! इसमें भी डाके और आग की खबर आ गई ।
मालूम होता है कि जैत अवश्य इन डाकुओं से मिल गया है । वही निर्मला को भगा ले गया है ।

सलाहकार : हाँ, श्रीमान् ! कुछ मुझे भी ऐसा ही शक होता है ।

पाठक : बड़ी मुसीबत है । जिधर देखो उधर डाके, खून, आग ! हमारे समाज में चरित्र का कितना पतन हो गया है ।

सलाहकार : जी हाँ, चरित्र से ही मनुष्य महान् बनता है ।

पाठक : मैं तो अपने अनुभव की बात कहता हूँ । मेरे जीवन में इतनी कठिनाइयाँ आईं । पर मैं उनसे कभी विचलित न हुआ । न मैंने अपने चरित्र को नीचे गिरने दिया । (अखबार देखते हुए) इधर यह चुनाव की आफत । कितनी पार्टियाँ भारत में बन गई हैं । ये सोशलिस्ट और ये कम्युनिस्ट ! मैं कहता हूँ, ये क्या हमारा मुकाबला करेंगे ! कहाँ है इनके पास इतनी ताकत, तपस्या और त्याग ! सब शासन के भूखे हैं । सब मिनिस्टर बनना चाहते हैं । वे समझते होंगे, इसमें

बड़ा आराम होगा । नींद हराम हो जाती है, साहब !
 सलाहकार : जी हाँ, जिम्मेदारी ऊपर आ जाती है, तो ऐसा ही होता है ।

पाठक : सच कहता हूँ, कभी मैंने यह नहीं सोचा कि यह जिम्मेदारी मुझ पर आपड़ेगी । ये देखो, कम्यूनिस्ट । इनकी जबान और इनके काम दोनों से ही देश तबाह हो जायगा ।

सलाहकार : जी, यह तो ठीक है । पर, इनके काम और संगठन की तो सब कोई तारीफ करता है । इसी कारण आज का नौजवान इस ओर अधिक आकर्षित होता जा रहा है ।

पाठक : अरे साहब ! ये तो टमाटर के बीज हैं, जहाँ फेंको वहीं निकल आयेंगे । इस सिर-दर्द की देश को क्या आवश्यकता ? भूख तो शासन की और साधन मजदूर का, मिस्टर द्विवेदी !

सलाहकार : जी, मैं द्विवेदी नहीं, त्रिवेदी हूँ ।

पाठक : ओह ! एम सोरी । और कहिये क्या हाल है ?

सलाहकार : बजट में घाटा चलेगा । अगले वर्ष भी पूरा होना सम्भव नहीं है ।

पाठक : (बिचली उँगली से सिर ठोकते हुए) सो तो होगा ही । पर, उसका उपाय ?

सलाहकार : टैक्स बढ़ाने होंगे । इससे डेढ़ वर्ष में किसी तरह जाकर पूरा होगा ।

पाठक : ठीक है, यह तो करना ही होगा ।

नौकर : (नौकर प्रवेश कर) हज़ूर, गुमानपुरा के पंच आये हैं ।

पाठक : (प्रसन्न होता हुआ) ओ, अच्छा ! आने दो । (नौकर जाता है और पंच आते हैं । पाठक उठकर स्वागत करता है ।) जय हिन्द !

सब : जय हिन्द !

पाठक : बैठो, बैठो ! भाई बैठो ! (सब बैठते हैं)

ए० व्यक्ति : कुछ अरज करना है !

पाठक : हाँ, हाँ ! कहो, खुशी से कहो ! अब तो तुम्हारा ही राज है ।

दूसरा व्यक्ति : इसीलिए फरियाद लेकर आये हैं ।

पाठक : कहो, कहो !

सरपंच : अकाल के कारण चढ़ा हुआ हाँसिल माफ होना चाहिए और आगे के लिए भी हाँसिल कम होना चाहिए ।

पाठक : सो कैसे होगा ? राज का काम कैसे चलेगा ?

सरपंच : जब गये साल कुछ पैदा ही नहीं हुआ, तो कहाँ से देंगे और इस वर्ष से भरेंगे तो खायेंगे क्या ?

पाठक : देखो भाई ! सरकारी काम तो इसी से चलता है । सरकार तुम्हारी रक्षा करती है तो उसके लिए खर्चा कहाँ से आयगा ? ऐसा नहीं हो सकेगा ।

ती० व्यक्ति : पहले तो आप कहते थे कि हाँसिल मत दो । अब आप कहते हैं ऐसा नहीं हो सकता ।

पाठक : तुम्हें अभी बात करना नहीं आता ।

सरपंच : आगे का हाँसिल तो कुछ कम कीजिए, तो पीछे का थोड़ा-थोड़ा करके देंगे ।

पाठक : अच्छा अभी कितना देते हो ?

सरपंच : चौथा हिस्सा ।

पाठक : चौथा हिस्सा ! यह तो ज्यादा है । (सोचकर) अच्छा तीसरा हिस्सा दे दो ।

सरपंच : अरे साहब मर जायेंगे !

पाठक : बस, बस ठीक है ।

ती० व्यक्ति : तीसरा हिस्सा ! वैसे ही गोली से मार डालिए सबको । हमारे बाल-बच्चों पर.....

पाठक : बस, बस, चुप रहो ! जाओ, आप लोग । मुझे बात करने का समय नहीं है ।

सब : (जाते हुए) ऐसा नहीं समझा था, आपको !

सलाहकार : साहब, तीसरा हिस्सा तो चौथे हिस्से से ज्यादा होता है ।

पाठक : हैं ! (सोचता हुआ) ऐसा.....तो ठीक है । टैक्स तो बढ़ाना ही होगा । नहीं तो घाटा कैसे पूरा होगा ? हाँ, एक काम कीजिए । इधर एक-तिहाई कर दीजिये । और, पिछला लगान तीन-चौथाई ही वसूल कीजिए तो आठ प्रतिशत अधिक लाभ होगा । सरकारी काम तो इसी तरह चलना चाहिए । गुमानपुरा के लोग तो ऐतिहासिक मक्कार हैं । देखो न, जैत को ? उन्होंने ही कहीं छिपा रखा होगा । उसका वारंट रद्द कर दिया तो वह उस लड़की को ही भगा ले गया । क्यों साहब, एक-दो मिल आस-पास और खोल दिये जायें तो ?

सलाहकार : यह तो हमें करना ही है । मेरी समझ में केसर-पुरा और गणेशपुरा, ये दोनों जगहें ऐसी हैं, जो आस-पास की रूई खींच सकती हैं । इन दोनों स्थानों से रूई की गांठें बँधकर गुमानपुरा में भी जा सकती हैं ।

पाठक : तो फिर सेठ लक्ष्मीचन्द से बातचीत करनी होगी ।
(उठता है) अच्छा, जय हिन्द !

सलाहकार : (प्रस्थान करता हुआ) जय हिन्द !

सम्पादक : (प्रवेश कर) जय हिन्द !

पाठक : कहिये, (बैठकर) आपका बाल-मन्दिर तो ठीक चल रहा है न ?

सम्पादक : बाल-मन्दिर तो आपका ही है...

पाठक : बैठिये न ।

सम्पादक : (बैठता हुआ) साहब, आप उसके संस्थापक हैं ।

पाठक : पर, अब तो आप ही उसके कर्त्ता-धर्त्ता हैं । बहुत इच्छा होती है, उधर आने की । पर, क्या करूँ भाई ! इस पचड़े में ऐसा फँस गया हूँ कि फुरसत ही नहीं मिलती । तुम...एक...काम...करो, मैं न आ सकूँ, तो हफ्ते-दो-हफ्ते, या जब भी इच्छा हो, यहाँ चले आया करो, जिससे अपने बच्चों का कुछ हाल तो मालूम हो जाय, या तुम मुझे उधर ले जाओ । जबरदस्ती भी ले जा सकते हो । मुझे बच्चों में बहुत ही दिलचस्पी है ।

नौकर : (बाहर से ही) क्या काम है, नहीं जा सकते ।

ए० व्यक्ति : (बाहर ही से) मुझे कौन रोक सकता है ?
(प्रवेश कर) मुझे भी रोका !

पाठक : आप ! (आश्चर्य प्रकट करता है)

व्यक्ति : गद्दी पर बैठते ही भूल गये बेटा, अपने बूढ़े चाचा को !
ओफ...मुझ पर भी यह रोक !

पाठक : जी, आप बाहर जाइये, मैं जरूरी काम कर रहा हूँ ।
बाहर बैठिये, फिर बुला लूँगा ।

व्यक्ति : तुम-जैसों से ऐसी ही आशा थी । मुझे बुढ़ापे में धक्के
लगवाये, तुमने । अब कभी यहाँ न आऊँगा ।

पाठक : अच्छा, अभी आप जाइये । (वृद्ध जाता है)

सम्पादक : संस्था पर बहुत कर्जा हो गया है । यह किसी तरह
पूरा हो जाय तो अच्छा हो ।

पाठक : संस्था का कर्ज तो जनता के सिर पर है । इसकी क्या
चिन्ता ? कर्ज न हो तो चन्दा कौन देगा ? मेरी राय
में कर्ज दिखलाते ही रहना चाहिये ।

सम्पादक : पर मुझे तो चिन्ता से नींद नहीं आती ।

पाठक : देखें, कुछ करेंगे । सेठजी से बात करेंगे । पर सेठजी से
मेरा विचार...इस बारे में कहना ठीक न होगा । एक
काम करो । सेठजी अभी आने वाले हैं, तुम उनसे संस्था
के मकान के लिए कर्ज की बातचीत क्यों नहीं कर
लेते ? ये कर्ज-वर्ज फिर देखा जायगा ।

सम्पादक : साहब एक-दो मिल की और आज्ञा दे दीजिये और
इस बहाने कुछ पैसा संस्था को भी दिलवा दीजिये ।

पाठक : ठीक है, पर सरकारी काम में यह कैसे हो सकता है ?

लक्ष्मीचन्द : (प्रवेश कर) जय हिन्द !

पाठक : (उठकर) जय हिन्द ! बैठिये । (सम्पादक भी उठकर

जय हिन्द के साथ स्वागत करता है)

लक्ष्मीचन्द : (सम्पादक की ओर देखकर) ओ हो-हो ! (दोनों हाथ जोड़ते हैं)

पाठक : कहिये, क्या हाल है ? इन्हें आप जानते हैं ?

लक्ष्मीचन्द : कृपा है आपकी । आपको कौन नहीं जानता, सम्पादकजी महाराज !

सम्पादक : नहीं, मैंने अब यह काम छोड़ दिया है। राजनीति से मुझे अब घृणा हो गई है । आज-कल मैं बाल-मन्दिर में काम करता हूँ ।

पाठक : बहुत उत्साही सज्जन हैं । जाने क्यों इन्हें राजनीति से घृणा हो गई । अन्यथा मैं समझता हूँ, जनता का अच्छा नेतृत्व कर सकते हैं...सम्पादक रहकर ।

सम्पादक : यद काम भी मैंने अपने एक युवक साथी को दे दिया है ।

पाठक : मेरे पीछे बाल-मन्दिर का काम हाथ में लेकर, मुझे तो चिन्ता से मुक्त कर ही दिया । पर संस्था में भी नया जीवन डाल दिया है ।

लक्ष्मीचन्द : कहिये, कैसी चल रही है आपकी संस्था ?

सम्पादक : मेरी संस्था ! संस्था तो आपकी है । आप वहाँ जाकर स्वयं निर्णय करें कि कैसी चल रही है । हाँ, कर्जा बहुत हो गया है ।

पाठक : इसका भार तो सेठ लोगों पर ही होता है । अच्छा, दो मिनिट के लिए क्षमा कीजिए । मैं अभी आया ।
(प्रस्थान)

सम्पादक : हाँ, ये ही लोग तो संस्थाओं के प्राण होते हैं ।

लक्ष्मीचन्द : कितना कर्ज है ?

सम्पादक : मैं आप से कर्ज की बातें तो करता नहीं, मैं दूसरे प्रकार की सहायता चाहता हूँ ।

लक्ष्मीचन्द : किस प्रकार की ?

सम्पादक : संस्था के पास कोई मकान नहीं है, इसमें यदि आप सहायता कर सकें ।

लक्ष्मीचन्द : अच्छा, सोचूँगा ।

सम्पादक : खैर, विचार कर देखिये । आशा तो आप से अच्छी है ।

लक्ष्मीचन्द : (धीरे से) देखिये, हम व्यापारी हैं । हम इस जेब से एक हजार तभी देते हैं, जब दूसरी जेब में हमारे पास पाँच हजार आ जायँ ।

सम्पादक : (धीरे से) ठीक है, यदि आप हमारा काम कर देंगे, तो आपके लिए एक-दो और मिलों की आज्ञा का प्रयत्न करूँ ।

लक्ष्मीचन्द : मिलें नहीं, मुझे यहाँ की खानों का ठेका चाहिये ।

सम्पादक : यह भी हो सकता है । (पाठक को आते देखकर) अच्छा तो चलूँ ।

पाठक : बस, जाओगे ? फिर आना कभी । (प्रस्थान । सेठ से) कहिये । (बैठता है)

लक्ष्मीचन्द : सब ठीक है ।

पाठक : देखिये सेठ साहब ! सरकार बहुत जल्दी निर्णय करने वाली है कि यहाँ कुछ उद्योग-धन्धे चालू किये जायँ । हम

यहाँ जिनिंग मिल लगाना चाहते हैं । जिससे गणेशपुरा को रुई मिलती रहे ।

लक्ष्मीचन्द : यह तो आपने अच्छा किया, इससे लोगों की बेकारी मिटेगी । पर इस डाके के कारण मुझे बहुत हानि उठानी पड़ी है । यदि आप यहाँ की खानों का ठेका दिलवाने की कृपा करें, तो मेरा और आपका, दोनों का लाभ हो सकता है ।

पाठक : अच्छा देखेंगे । पता लगा, निर्मला का ?

लक्ष्मीचन्द : हाँ, गुमानपुरा में है । जैत के साथ चली गई ।

पाठक : जैत को इतना बड़ा डाका डालने की सजा मिलनी चाहिए ।

लक्ष्मीचन्द : उस डाके में जैत का हाथ तो नहीं है । सुनते हैं कुबेरसिंह नाम का कोई जागीरदार डाकू है ।

पाठक : कुबेरसिंह डाकू ! (चिन्ता व्यक्त करता हुआ) और पुलिस उसे पकड़ भी न सकी ।

लक्ष्मीचन्द : साहब, खिड़की में खड़े होकर उसने बन्दूक उठाई, तो पुलिस भाग गई । फिर उसने ऐसा फायर किया कि चारों ओर धुआँ ही धुआँ हो गया । वह उसी खिड़की से ऊँट की पीठ पर कूद पड़ा और हवा हो गया । सब देखते रह गये ।

पाठक : हमारी पुलिस बड़ी कमजोर है । (नौकर प्रवेश कर कार्ड देता है) आने दो ।

संवाददाता : जय हिन्द, श्रीमान् जी !

पाठक : आओ, जय हिन्द !

लक्ष्मीचन्द : अच्छा, तो मैं आज्ञा चाहूँगा !

पाठक : अच्छा। (लक्ष्मीचन्द का प्रस्थान। संवाददाता से) अरे भाई, तुम तो सोशलिस्ट पार्टी के लीडर क्या बन गये, कभी आते ही नहीं इधर तो।

संवाददाता : इसीलिए तो आया हूँ श्रीमान् जी ! आपके साथ चाय पीने।

पाठक : चाय तो मैं पीता ही नहीं, दूध पिला सकता हूँ। (घंटी बजाकर नौकर को दो गिलास दूध लाने को कहता है) चाय से कुछ तबियत खराब रहती है।

संवाददाता : अरे, यह कब से ? पहले तो आप चाय पीते थे।

पाठक : पहले दूध नहीं मिलता था, इसलिए चाय पीता था।

संवाददाता : अब दूध मिलता है ?

पाठक : हाँ, यह लो ! (नौकर दोनों के सामने दूध के गिलास रखकर चला जाता है)

संवाददाता : बाजार में तो दूध नहीं मिलता।

पाठक : पहले नहीं मिलता था, अब तो मिलता होगा।

संवाददाता : (दूध पीकर) अरे यह तो शुद्ध दूध है। जी हाँ, मिलता तो है। पर, इसमें तो बहुत फर्क है।

पाठक : क्या ?

संवाददाता : पहले दूध में पानी मिलता था और अब पानी में दूध मिलता है।

पाठक : भाई, तुम तो पूरे सोशलिस्ट हो। पहले चाय पीनेवाले कम थे। अब तो तुम्हारा चाय बिना काम चल ही नहीं सकता। तुम चाय के पानी में दूध मिलाते हो।

दूध की कमी हो जाती है, इसी से वे लोग पानी में दूध मिलाना सीख गये ।

संवाददाता : (एक घूँट लेकर) और, सुना है, आपने खदर छोड़ दी ।

पाठक : तुम देख जो रहे हो, मैं खदर ही तो पहने हूँ या और कुछ ?

संवाददाता : ये परदे ! ये सजावट !

पाठक : ये सब सरकारी हैं । नया सामान खरीदकर सरकारी रुपया क्यों व्यर्थ बरबाद किया जाय । और फिर आज-कल खदर की कमी भी तो है ।

संवाददाता : और सुना है, कुछ मिल और फैक्टरियाँ खोली जा रही हैं । कुछ खानों का भी काम चलेगा ।

पाठक : तुमने सुना होगा, मैंने नहीं ।

संवाददाता : और चुनाव का क्या होगा ?

पाठक : विजय हमारी होगी ।

संवाददाता : हाँ, आपकी सहायता के लिए लक्ष्मीचन्दों की क्या कमी है । पर लोगों की कठिनाइयों का बीमा करवा रहे हैं, आप श्रीमानजी, जीतने का स्वप्न देखकर । हम तो कहते हैं विजय समाजवाद की होगी ।

पाठक : समाजवाद तो हमारे सामने अभी बच्चा है बच्चा ! उसके बड़े होने के पूर्व तो हम उसे कुचल देंगे ।

संवाददाता : मैं जानता हूँ श्रीमान जी, संसार में स्वार्थ का बहुमत है और प्रजातन्त्र में बहुमत की विजय होती है । फिर भी मैं कहता हूँ कि चुनाव में यदि हमें एक

सीट भी मिल जाय तो हमारी भावी विजय निश्चित है । (सोचकर) और हाँ, आपने जैत पर फिर वारंट निकलवा दिया ?

पाठक : हाँ, गुण्डे को दण्ड मिलना ही चाहिए ।

संवाददाता : यह भी अच्छा किया आपने । नहीं, तो शायद वह भी आपके विरुद्ध चुनाव में खड़ा होता । अच्छा ! आपका संवाद पूरा हो चुका । धन्यवाद, आज्ञा !

पाठक : अच्छा । (संवाददाता का प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

[गुमानपुरा गाँव का एक मार्ग । जैत और निर्मला चले आ रहे हैं ।]

जैत : बहुत दिनों के पश्चात् अपने गाँववालों के साथ मिलकर वैसी ही प्रसन्नता होगी जैसी अपने सम्बन्धियों के साथ मिलने से होती है । अपनी धरती के दर्शन कर उतना ही आनन्द होता है, जितना माता के दर्शन करके होता है ।

निर्मला : हाँ, अपना कोई नहीं होता, तो दूसरों को देखकर उसी प्रकार के आनन्द का अनुभव होना स्वाभाविक है ।

जैत : जब मनुष्य अपने और पराये का भेद-भाव त्यागकर अपने को सब से सम्बन्धित देखता है, तभी उसे इस आनन्द की प्राप्ति होती है । ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे फिर से नये जीवन में प्रवेश कर रहा हूँ । यहाँ का सारा दृश्य एक नवीन जीवन धारण कर गया है । (सामने एक वृक्ष के नीचे एक समाधि के पास आकर) ओह !

यह समाधि किसकी है ?

निर्मला : तुम्हें नहीं मालूम ? यह उसी स्त्री की है, जिसने पाठक जी को छुड़ाने में पुलिस की गोली खाकर अपने प्राण त्याग दिये थे । मैंने उसकी स्मृति को चिर बनाने के लिए यह समाधि बनवा दी थी ।

जैत : जीवन की मधुर स्मृतियों को दबाकर हृदय स्वयं एक समाधि बन गया है निर्मला देवी ! (एक कनेर के पास जाकर कनेर को हृदय से लगाता हुआ) समाधि के निकट ही तुम्हारे फूलने का उपयुक्त स्थान है । (कुछ फूल तोड़कर समाधि पर चढ़ाता है और उसे प्रणाम करता है) सोती रहो मेरे हृदय की स्मृतियों ! तुम्हारे ऊपर ये फूल सदा मुस्काते और मुरझाते रहें । (गाँव के एक व्यक्ति का प्रवेश)

व्यक्ति : अरे जैत !

जैत : हाँ, दादा ! मैं ही हूँ ।

व्यक्ति : अरे तुम तो पहचाने भी नहीं जाते ? इतने बदल गये !

जैत : दुनियाँ बदल गई !

व्यक्ति : कब से हम तुम्हारी राह देख रहे हैं । (जोर से आवाज देकर) अरे ओ मोड़ा, किसना, भीमा भाई होओ... अरे जैत आ गया है..... (गाँव के कई लोग आकर जैत को गले लगाते हैं । स्त्रियाँ आकर गीत गाती हैं और उसका स्वागत करती हैं । इस प्रकार कोई आता है, कोई जाता है । फूलमालाओं से भी उसका स्वागत किया जाता है । सब नाच-गान में उत्तम हो जाते

हैं । बन्द हो जाने के बाद संवाददाता आता है ।)

संवाददाता : ओहो, जैत ! चलो, अच्छा हुआ, तुम आ गये ।

(गाँव वालों से) भाइयो ! एक साथ दो-दो खुशियाँ मनाने का आपको आज अवसर मिला है । एक बार और नाचें और गाएँ तो मैं आपका फोटो खींच लूँ । केमरा लेकर फोटो खींचता है ।

ए० व्यक्ति : ये दो-दो खुशियाँ कैसी ?

संवाददाता : क्यों, एक तो जैत के आने की और दूसरी आपने नहीं सुनी ? निर्मलाबाई जी ने नहीं बताई ?

व्यक्ति : नहीं, कैसी ?

संवाददाता : कल मिल का जो उद्घाटन होने वाला है, पाठक जी के हाथों से ।

दू० व्यक्ति : अरे वह थैली काम कर गई !

संवाददाता : वह देखो, वह जो बम्बा दीख रहा है ।

जैत : मिल, आखिर मिल लग ही गई । गरीबों की धरती को पूँजीपति के लिए उपजाऊ बना ही दिया गया । क्या सुन रहा हूँ, मैं निर्मलादेवी जी ?

निर्मला : हाँ, बिलकुल ठीक है ।

जैत : क्या इसीलिए आपने मुझे इतनी दूर छिपा रखा था ? इसीलिए आप मुझे यहाँ आने से रोकना चाहती थीं कि कल उद्घाटन होनेवाला है । (पुलिस इन्स्पेक्टर और उसके दो साथियों का प्रवेश)

इन्स्पेक्टर : जैत, तुम्हारे नाम का वारन्ट है, इधर आओ ।
(सब लोग आश्चर्य से देखते हैं)

जैत : वारन्ट ! मेरे नाम का ? लो करलो गिरफ्तार। (दोनों हाथ आगे बढ़ाता हुआ)

सब : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।

संवाददाता : आप लोग शान्त रहिये। पाठक जी ने यह काम ठीक ही किया है। उसके अनुसार गुण्डे का घर तो जेल ही है।

ए० व्यक्ति : (क्रोध और व्यंग से) जैत गुण्डा है ?

संवाददाता : हाँ, जो मिल-मालिक के घर में आग लगावे, बीस हजार का डाका डाले, और उसकी लड़की को भगा लावे, वह गुण्डा नहीं, तो क्या देवता है ?

निर्मला : यह क्या कह रहे हैं, आप ? मुझे कोई भगाकर नहीं लाया है। मैं तो स्वयं अपनी इच्छा से आई हूँ।

ए० व्यक्ति : (जैत को पीछे हटाकर) आग तो मैंने लगाई है, मुझे पकड़ो।

दू० व्यक्ति : डाका तो मैंने डाला है। मैं कुबेरसिंह डाकू हूँ, मुझे पकड़ो।

ती० व्यक्ति : इन्स्पेक्टर साहब ! किस अपराध में पकड़ रहे हैं, जैत को ?

इन्स्पेक्टर : यह तो मैं नहीं जानता। (जैत के हाथ में हथकड़ी डालता हुआ) मुझे तो केवल गिरफ्तार करने का आदेश है।

जैत : हाँ, हाँ, ठीक है। चलिए। (चलने लगता है, तो सब जैत को पकड़ लेते हैं)

पाठक : (प्रवेश कर) जैत !

संवाददाता : लीजिए श्रीमानजी, गुण्डा गिरफ्तार हो गया ।
 अब न कोई डाका पड़ेगा और न कोई चुनाव लड़ेगा ।
 और...न आपके उद्घाटन में कोई विघ्न ही पड़ेगा ।
 (सारे दृश्य का फोटो लेता है)

पाठक : अच्छा, अच्छा, (इन्सपेक्टर से) कहाँ ले जा रहे हो ?
 छोड़ दो । बहुत खुशी हुई, जैत, तुम से मिलकर ।
 इन्सपेक्टर ! देखिये, ये हथकड़ियाँ खोल दीजिए ।

इन्सपेक्टर : हजूर, खोलने का हमारे पास कोई हुक्म नहीं है,
 तो फिर कैसे.....

पाठक : मैं आज्ञा देता हूँ, मेरी आज्ञा है, खोल दो ।

इन्सपेक्टर : मैं मजबूर हूँ, हमारे अफसर की आज्ञा चाहिए ।
 (ले जाता है । सब लोग 'जैत' 'जैत' चिल्लाते हैं और
 उसकी 'जय' 'जय' बोलते हुए उसके पीछे-पीछे जाते हैं ।
 पाठक और संवाददाता वहीं खड़े रह जाते हैं ।)

संवाददाता : लीजिये, रास्ता साफ ।

पाठक : तुम बहुत वाचाल हो गये हो । मुझे तुम्हारा भी कुछ
 उपाय करना होगा ।

संवाददाता : एक वारण्ट मेरे नाम पर भी, वस, फिर यह भी
 रास्ता साफ । इससे अधिक अधिकार का सदुपयोग
 और क्या होगा ।

पाठक : नहीं तो दुरुपयोग होगा ?

संवाददाता : हाँ, हाँ, वही सदुपयोग या दुरुपयोग । एक ही बात
 है । सज्जन करें सदुपयोग, दुर्जन करें दुरुपयोग । दोनों
 में कोई न कोई योग अवश्य है ।

पाठक : खैर, यह लपर-चपर बन्द करो । यह बताओ, अब क्या करना होगा ?

संवाददाता : मुझे अपना सलाहकार बना लीजिए ।

पाठक : अच्छा बना लूँगा । पर यह तो बताओ कि कल कोई गड़बड़ तो न होगी ।

संवाददाता : गड़बड़ तो निश्चित है । ऐसे मौके पर जैत को पकड़वाना ठीक नहीं रहा ।

पाठक : खैर, उसे छुड़वा दिया जायगा ।

संवाददाता : खसम करना बुरा है और करके छोड़ देना और भी बुरा ।

पाठक : तो क्या किया जाय ?

संवाददाता : शासन के हथकण्डों के तो आप भुक्तभोगी हैं, फिर मुझे क्यों पूछते हैं, आप ! पर जैत को वश में करने से पूर्व इन लोगों को वश में करना चाहिए, नहीं तो कल ये गँवार अवश्य गड़बड़ करेंगे ।

पाठक : तो कैसे कुछ किया जाय ?

संवाददाता : कुछ पैसा खर्च करना पड़ेगा ।

पाठक : इसकी कोई चिन्ता न करो ।

संवाददाता : हाँ, लक्ष्मीचन्दों के पास पैसे की क्या कमी । मुद्दे की बात कीजिये तो कुछ किया जा सकता है ।

पाठक : (जेब से पचास रुपये के नोट निकालकर) लो, अभी तो पचास ।

संवाददाता : इससे क्या होगा ? ये तो शराब के ढोल में ही गल जायँगे । मेरा महनताना ?

पाठक : सब ठीक हो जायगा, अभी इससे काम चलाओ ।

संवाददाता : अच्छी बात है । तो चलो ।

पाठक : अच्छा, चलो, मैं भी चलता हूँ । (दोनों का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

[स्थान वही पहले दृश्यवाला, पर दृश्य कुछ बदल गया है । कुएँ के पास एक मिल खड़ा हो गया है, जिसके उद्घाटन के लिए सजावट हो रही है । कुएँ का आधा भाग मिल के अहाते में और आधा भाग बाहर है, दोनों ओर पनघट हैं । कुएँ से एक नल मिल में जाता है । पनघट पर कुछ आधुनिक ढंग की गिरियाँ लगी हैं । जानवरों के पीने के लिए एक पक्की प्याऊ भी है । मिल के फाटक के बाहर एक चक्राकार मार्ग है । आस-पास फूलों की क्यारियाँ लगी हैं । बीच में हरा घास और फूलों से भरा हुआ छोटा-सा चक्राकार मैदान है, जिसके बीच में जैत की मूर्ति लगी है । मूर्ति के एक ओर आक और दूसरी ओर कनेर लगा है] ।

जैत : (प्रवेश कर इधर-उधर घूमता है । उसके पीछे-पीछे निर्मला भी है) नहीं, अब मैं अपना निर्णय नहीं बदल सकता ।

निर्मला : जैत ! इस पर एक बार फिर से विचार कर लो ।

जैत : एक निर्णय, एक बात, एक मार्ग, एक निश्चय ।

निर्मला : इससे तुम कठिनाइयों में पड़ जाओगे ।

जैत : कठिनाइयों में कहाँ नहीं पड़ा हूँ ?

निर्मला : परन्तु, तुम अपने निर्णय से अपने गाँववालों पर आने वाली कठिनाइयों का तो ध्यान करो । छोटे-छोटे

मासूम बच्चे, निर्बल स्त्रियाँ, कहाँ इधर-उधर भटकते फिरेंगे, अपना घर, अपनी जमीन, अपना गाँव सब कुछ छुड़ाकर, इन्हें तुम कहाँ ले जाओगे ? इन्होंने ऐसा क्या अपराध किया है ?

जैत : यह प्रश्न तो मेरा है । यह तो मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि इन गरीबों ने आपका ऐसा क्या अपराध किया है, जिस कारण इनकी उपजाऊ धरती मुफ्त में छीन लो गई । कुछ दिनों में शायद इनके घर और गाँव भी ले लिये जावेंगे । फिर तो ग्राम-बालाओं की इज्जत भी खुले आम लूटी जावेगी ।

निर्मला : इस मिल से इनकी आमदनी नहीं बढ़ेगी ?

जैत : यह मिल नहीं, यह तो इन गाँववालों की समाधि है, जिसका द्वारपाल है यह जैत का पुतला ! (मूर्ति की ओर संकेत करता हुआ एक बड़ा-सा पत्थर उठाकर मूर्ति पर आघात करता है, फिर उसे तोड़ने के लिए आगे बढ़ता है । निर्मला उसे रोकने को सामने आती है ।)

निर्मला : यह क्या कर रहे हो ?

जैत : हट जाओ मेरे सामने से, हट जाओ ।

निर्मला : रुक जाओ जैत ! मैंने तुम्हारे त्याग और प्रेम का स्मृति-चिन्ह खड़ा किया है ! इसे मत तोड़ो, भगवान के लिए !

जैत : हट जाओ, मेरे मार्ग से ! धन से प्रेम नहीं खरीदा जा सकता, मनुष्य का चरित्र भले ही खरीदा जा सकता हो । (जाकर मूर्ति को तोड़ देता है) टूटो ! टूटो !

(हिलाता हुआ) टूटो ! (लात मारकर) मिट्टी में मिल जाओ, सदा के लिए ! (कनेर और आक को देखकर) प्रेम में रोने वाले कनेर ! और, काल में हँसने वाले आक ! व्यर्थ में बार-बार क्यों उगते हो ? (तोड़कर फेंक देता है । सब ग्रामवासी आ जाते हैं सब अपना-अपना सामान सिर पर गाड़ियों में बैलों पर लिये हुए चले आते हैं । बीच में जैत की जय-जय कार करते हैं)

एक व्यक्ति : (टूटी हुई मूर्ति को देखकर) अरे, यह क्या किया जैत, तुमने !

जैत : एक जीवन की समाप्ति और दूसरे का आरम्भ ।

निर्मला : आप लोग कहाँ जायँगे ?

सब : जहाँ जैत ।

निर्मला : आप लोग मत जाइये । जैत को रोकिये । अपने बाप-दादाओं के बसाये हुए इस गाँव को उजाड़कर मत जाओ ।

जैत : गाँव की समाधि पर कपास के फूल लगेंगे । जहाँ जायँगे वहीं गाँव बस जायगा । आप इसकी चिन्ता न कीजिये । स्वतंत्र भारत वसुन्धरा की गोदी में कहीं रहने को थोड़ा-सा स्थान मिल जायगा । (आगे बढ़ता है । मार्ग में जागीरदार खट्टर की पोशाक पहने अपने आदमियों के साथ मिलता है)

मानसिंह : जैत !

जैत : (आगे बढ़ता हुआ) साम्राज्यवाद का अन्त हो चुका । जनता में विश्वास पैदा करने के लिए हृदय परिवर्तन की आवश्यकता है, वेश-परिवर्तन की नहीं ।

लक्ष्मीचन्द : (प्रवेश कर) जैत मेरी भूल...

जैत : धन से राजनीति खरीदी जा सकती है, मानवता नहीं ।

(आगे बढ़ता है)

पाठक : (प्रवेश कर) जैत ठ...ह...रो...

जैत : आदर्शों के स्वप्न दिखाना मानवता का राजनैतिक अभि-
शाप है ।

संवाददाता : (प्रवेश कर) जैत !

जैत : समाजवाद व्यक्ति का सामाजिक शोषण है ।

सम्पादक : (प्रवेश कर) जैत, समय बदल रहा है । तुम
न जाओ ।

जैत : जैत को एक से अधिक चोला बदलना नहीं आता ।

लक्ष्मीचन्द : निर्मला ! तुम जैत को रोको ।

निर्मला : नहीं, जैत मैं ओ तुम्हारे साथ चलूँगी ।

जैत : नहीं, तुम न जाओ । मुझे जाना होगा, अकेले ही ।

(फाटक के पास आकर) देखो ! देखो ! निर्मला !

(फाटक को खोलकर निर्मला को फाटक के भीतर
भेजकर फाटक बन्द कर देता है) यह तुम्हारी जगह
है, निर्मला देवी ! तुम यहाँ की लक्ष्मी हो । तुम इस
मन्दिर की प्रतिमा हो । चलो भाइयो ! (सब गाते
हुए जाते हैं) मैं किसी के मार्ग में मुसीबत बनकर
नहीं जीना चाहता । (सब 'जैत' 'जैत' चिल्लाते हैं ।
निर्मला जैत के लिए रोती हुई दौड़ती है । लक्ष्मीचन्द
उसे पकड़ लेता है । निर्मला मूर्छित हो जाती है)

(यवनिका पतन)

